B-3

(शास्त्री प्रथम वर्ष परीक्षा)

('ख' वर्ग हिन्दी अष्टम पत्र)

★त्यागपत्र
★छोटे नाटक

रामजी लाल पालीवाल

अङ्क—१००

लेखक—

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

Ramjilal Paliwal Shagaved

शारदा संस्कृत संस्थान

वाराणसी-२२१००२

शारदा संस्कृत संस्थान
सी. २७/५६ जगतगञ्ज,
वाराणसी–२२१००२

अन्य प्राप्ति-स्थान :
शारदा भवन
डी. ३६/६४, अगस्त्यकुण्ड,
वाराणसी–२२१००१

☎ ३२७४७७

© प्रकाशकाधीन

अक्षरसंयोजकः
फ्रॉन्टीयर ग्राफिक्स
बी० २१/१०८ विनायका,
कमच्छा, वाराणसी

प्रश्नानुक्रमणिका

प्रश्नः पृष्ठाङ्क

प्रश्न १– जैनेन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' की कथावस्तु लिखिए। १

प्रश्न २– 'त्यागपत्र' नामक उपन्यास की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए। १२

प्रश्न ३– सुप्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार का जीवन-परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिये। १८

प्रश्न ४– भाषा-शैली की दृष्टि से 'त्यागपत्र' उपन्यास की समीक्षा कीजिए। २२

प्रश्न ५– 'त्यागपत्र' के आधार पर प्रमोद का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए। २५

प्रश्न ६– 'त्यागपत्र' के आधार पर मृणाल का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए। २८

प्रश्न ७– 'व्यक्तिवादी' उपन्यास किसे कहते हैं ? इस उपन्यास में से आवश्यक उद्धरण देते हुए जैनेन्द्र के औपन्यासिक व्यक्तिवाद पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए। ३०

प्रश्न ८– जैनेन्द्र जी के 'त्यागपत्र' के आधार पर पाप पुण्य की नैतिक मान्यताओं का मूल्यांकन कीजिए तथा यह भी स्पष्ट करें कि इसकी रचना आत्म-ज्ञान और चरित्र की आन्तरिक शुद्धता की कसौटी पर किया गया है। ३३

प्रश्न ६– चरित्र-चित्रण की दृष्टि से जैनेद्र जी की नाट्यकला की समीक्षा कीजिए तथा यह भी सिद्ध कीजिए कि यह उपन्यास चरित्र प्रधान है। ३५

प्रश्न १०– जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी के स्वरूप, उनकी स्थिति और उनके उन्मुक्त प्रेम पर अपने विचार व्यक्त कीजिए। ३७

शारदा संस्कृत संस्थान
सी. २७/५६ जगतगञ्ज,
वाराणसी—२२१००२

अन्य प्राप्ति-स्थान :
शारदा भवन
डी. ३६/६४, अगस्त्यकुण्ड,
वाराणसी—२२१००१

☎ ३२७४७७

© प्रकाशकाधीन

अक्षरसंयोजक:
फ्रॉन्टीयर ग्राफिक्स
बी० २१/१०८ विनायका,
कमच्छा, वाराणसी

प्रश्नानुक्रमणिका

प्रश्नः	पृष्ठाङ्क
प्रश्न १– जैनेन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' की कथावस्तु लिखिए।	१
प्रश्न २– 'त्यागपत्र' नामक उपन्यास की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।	१२
प्रश्न ३– सुप्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार का जीवन-परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिये।	१८
प्रश्न ४– भाषा-शैली की दृष्टि से 'त्यागपत्र' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।	२२
प्रश्न ५– 'त्यागपत्र' के आधार पर प्रमोद का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।	२५
प्रश्न ६– 'त्यागपत्र' के आधार पर मृणाल का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।	२८
प्रश्न ७– 'व्यक्तिवादी' उपन्यास किसे कहते हैं ? इस उपन्यास में से आवश्यक उद्धरण देते हुए जैनेन्द्र के औपन्यासिक व्यक्तिवाद पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।	३०
प्रश्न ८– जैनेन्द्र जी के 'त्यागपत्र' के आधार पर पाप पुण्य की नैतिक मान्यताओं का मूल्यांकन कीजिए तथा यह भी स्पष्ट करें कि इसकी रचना आत्म-ज्ञान और चरित्र की आन्तरिक शुद्धता की कसौटी पर किया गया है।	३३
प्रश्न ९– चरित्र-चित्रण की दृष्टि से जैनेन्द्र जी की नाट्यकला की समीक्षा कीजिए तथा यह भी सिद्ध कीजिए कि यह उपन्यास चरित्र प्रधान है।	३५
प्रश्न १०– जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी के स्वरूप, उनकी स्थिति और उनके उन्मुक्त प्रेम पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।	३७

प्रश्न ११– प्रकृतिवादी उपन्यास किसे कहते हैं। क्या 'त्यागपत्र' एक प्रकृतिवादी उपन्यास है ? ३६

प्रश्न १२– 'जैनेन्द्र उपन्यासकार कम दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक अधिक हैं'–इस कथन की विवेचना करते हुए 'त्यागपत्र' में उनकी औपन्यासिक दुर्बलताओं पर प्रकाश डालिए। ४०

त्यागपत्र

(जैनेन्द्र कुमार)

[एक अध्ययन]

प्रश्न १:- जैनेन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' की संक्षिप्त कथावस्तु लिखिए।

उत्तर :– त्यागपत्र के प्रमुख नारी-पात्र मृणाल के माता-पिता का उसके बचपन में ही देहावसान हो गया था और उसका पालन-पोषण अपने भाई और भावज के संरक्षण में हो रहा था। भाई तो अपने बहिन से अत्यधिक प्रेम करता था किन्तु भावज उससे घृणा न करते हुए भी उसी रूप में उसको वैसा ही दुलार नहीं कर पाती थी। उसके ऊपर अपनी ननद के चाल-चलन की देखरेख का भी उत्तरदायित्व था। मृणाल अत्यधिक सुन्दर और शोख लड़की थी।

एक बार की घटना है कि कक्षा की बालिकाओं ने अध्यापक की कुर्सी की गद्दी में पिनें फंसा दीं। जब अध्यापक कुर्सी पर बैठे तो पिनें चुभ जाने के कारण बडे लाल-पीले हुए और पूरी कक्षा को खड़ा करके पिटाई करने को तैयार हो गए। उनके द्वारा यह कहने पर कि या तो मुझे बता दो कि यह किसकी शरारत है, अन्यथा मैं एक-एक को पीटूंगा; मृणाल ने शीला का अपराध अपने सिर लेते हुए कह दिया कि यह मेरा कसूर है। यह सुनकर अध्यापक ने उसको अपने समीप बुलाकर तीन-चार बेंत मारे, किन्तु मृणाल टस से मस नहीं हुई।

मृणाल ने जिस लड़की का अपराध अपने सिर ले लिया था उसका नाम शीला था। छुट्टी होने पर शीला उससे गले लगकर रोने लगी। शीला और मृणाल का बहनेला (सखीत्व) और भी प्रगाढ़ हो गया और वह अक्सर उसके घर जाने लगी। यह शीला के घर आना-जाना ही आगे चलकर मृणाल की जान के लिए आफत बन गया, जिस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

मृणाल का एक प्रमोद नामक भतीजा था, जो उससे उम्र में चार-पाँच वर्ष छोटा रहा होगा, किन्तु मृणाल की उससे खूब पटती थी

कभी-कभी प्रमोद को मृणाल का व्यवहार बड़ा अजीब सा लगता था, क्योंकि अब उसको एकान्त अच्छा लगने लगा था–

"मैंने उस समय यह भी अनुभव किया कि उन्हें अब एकान्त उतना बुरा नहीं लगता क्योकि शाम के वक्त वह छत पर खटोला डाले ऊपर उड़ती हुई चीलों को ही चुपचाप देखती रहती हैं। कभी पतंग के पेंच देखती है और कटी हुई पतंग पर, जब तक ओझल न हो जाए, आंखें गाड़े रहती है। और नहीं तो खटोले पर पेट के बल लेटकर कोयले से धरती पर कीरम-कांटे ही खींचती है।"

मैं ऊपर छत पर पहुँचता तो उन्हें इस भाव में देखकर रूका रह जाता। जब उन्हें आकर मेरे वहाँ खड़े होने का बोध होता तो चौंक-सी एकदम कहती— 'अरे प्रमोद 'तू कहाँ था।'

"यहीं था।"

"क्यों रे तू अब मुझसे बोलता भी नहीं।"

"मैं बिना जवाब दिए पास आकर खटोले पर उसके बराबर बैठ जाता। यह शनैः शनै मुझको अपने ऊपर ही सुठरू लेती, कहतीं-देख पतंग देख पतंग······। इस पर वह एकाएक मुझे अपने अंक में भरकर कहतीं-हम तुम दोनों संग-संग उडाएँगे पतंग······।"

प्रमोद ने अनुभव किया कि कई दिनों से उसकी बुआ स्कूल से लेट लौटकर आती है। एक दिन प्रमोद पढ़कर लौटा तो रौद्र रूप धारण किए हुए माँ ने उससे बेंत मँगाया और कोठरी में बन्द करके मृणाल की इतनी पिटाई की उसके शरीर पर जगह-जगह नील उभर आए। उसके पश्चात् उसका पढ़ने जाना भी बन्द हो गया और पाँच-छह महीने पश्चात् मृणाल का विवाह कर दिया गया। विवाह के पश्चात् जब मृणाल विदा होने लगी तो उसने प्रमोद को छाती से लगाकर समझाया।

"भैया प्रमोद बड़ों की आज्ञा सदा माननी चाहिए। सबका आदर करना चाहिए। सदा सच बोलना चाहिए। अच्छे लड़के ऐसे ही बनते हैं। प्रमोद तू ऐसा ही होगा ना।" बाद में उसने यह भी कहा –

"प्रमोद तेरी बुआ तो मर गई। तू उसे अब कभी याद मत करना। कैसा राजा भैया है हमारा।" प्रमोद भी अपनी बुआ से रोता हुआ

लिपट गया और उसने बड़ी कठिनाई से उसको ससुराल जाने दिया।

मृणाल का विवाह जल्दबाजी में किया गया था, अतः लड़का खाते-पीते घर का होते हुए भी दुहाजू था। परिणाम यह निकला कि पहले से ही शीला के भाई की ओर अनुरक्ता मृणाल इस विवाह से प्रसन्न नहीं हुई। ससुराल से लौटकर मृणाल ने प्रमोद के हाथों शीला के भाई को एक पत्र भेजा। उस पत्र को पढ़कर शीला के भाई ने भी चिट्ठी लिखकर प्रमोद के हाथों मृणाल को भिजवाई और जबानी यह भी कहने को कहा कि अभी मैं एक महीने तक यहाँ ही हूँ। प्रमोद ने कौतूहलवश उस पत्र को पढ़ना आरम्भ किया तो उसके आरम्भ में लिखा हुआ My Dear सम्बोधन उसे बड़ा अच्छा प्रतीत हुआ। मृणाल कई मिनट तक उस पत्र को ध्यान से पढ़ती रहीं और बाद में उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और कहा -

"प्रमोद अब तू वहाँ कभी मत जाना। तुझसे जवाब लाने के लिए किसी ने कहा था। कभी किसी का कोई खत लाने की जरूरत नहीं है, समझा।"

प्रमोद कुछ भी नहीं समझा था, अतः मृणाल ने फिर कहा।

"तू इतना नासमझ क्यों है प्रमोद! तू नहीं जानता कि मेरी शादी हो गई है ?" बाद में उसने यह धमकी भी दी कि-

"देख प्रमोद, शीला के भाई का कोई पैगाम आया कि मैं छत से गिरकर मर जाऊँगी। मुझे उन्होंने क्या समझा है।.........जाकर यह शीला से कह देना। मैं सच कहती हूँ मैं मर जाऊँगी। मृणाल का कौल झूठा नहीं होता।"

शीला के भाई का फिर कोई पैगाम तो नहीं आया किन्तु एक बार फिर मृणाल ने ही उसको शीला के भाई से दवा के नाम पर जहर मँगाकर खाने की चेष्टा की। बेचारा प्रमोद झिड़की खाकर लौट आया। हाँ शीला के भाई को उसने यह कहकर मृणाल से मिलाने से इन्कार कर दिया कि ऐसी हालत में बुआ छत से गिर कर मर जाएगी।

मृणाल अपने पति के साथ जाने को अनिच्छुक पति के हठ के सामने उसकी अथवा उसके भाई की एक न चली। इसके पश्चात्-

ब्याह के कोई आठ-दस महीने बाद की बात होगी। देखते क्या हैं कि बिना कुछ खबर दिए बुआ एक नौकर को साथ लेकर घर चली आई है

मृणाल इस बार गर्भवती थी। उसकी दशा देखकर प्रमोद को बहुत क्रोध आता रहता था और वह अपने फूफा को आड़े हाथों लेने को तत्पर रहता था। एक दिन तो उसने भावावेश में मृणाल को यह आश्वासन दे दिया कि वह सदा इसी घर में रहेगी। देखूँ कौन फूफा होते हैं जो ले जाएँ। मृणाल की इस इच्छा को सुनकर प्रमोद चकित रह गया कि वह उसको बेतों से पीटना चाहती है। बातों में उसने बताया कि उसके फूफा उसे बेतों से पीटते हैं।

मृणाल अपने पति से लड़-झगड़कर आई थी; अतः उसके भाई साहब द्वारा खुशामद करने पर ही मृणाल के पति उसे ससुराल ले जाने को प्रस्तुत हुए। भाई ने मृणाल को समझाते हुए कहा–

"उनकी इस इतवार को आने की चिट्ठी आई है हैं। मिनी, देखो अब ऐसी गलती मत करना। वह आदमी भले हैं, इससे बात भी बन गई, नहीं तो बेटा ऐसा किया करते हैं ? थोड़ी बहुत रगड़–झगड़ तो होती ही रहती है पर पति के घर के अलावा स्त्री का और क्या आसरा है। यह झूठ नहीं है मृणाल, कि पत्नी का धर्म पति है। घर पतिगृह है। उसका धर्म,कर्म और उसका मोक्ष भी वही है। समझती तो हो बेटा।" बहुत समझाने-बुझाने पर मृणाल जाने को तैयार हो गई। जाने से पूर्व उसने प्रमोद से कहा था–"अच्छा एक बात बता। तू बड़ा हो जाएगा, तब मैं बुलाऊँगी तो तू आएगा?" प्रमोद ने कहा–"फौरन आऊँगा" "कैसी ही हालत में रहूँ।" "आऊँगा।" "तो सुन मैं कहती हूँ, तुम सब लोग मुझे भूल जाना। मैं जैसे गई, वैसे मरी। इसके बाद मैं तुम लोगों को बिलकुल तकलीफ नहीं दूँगी।" जाने से पूर्व मृणाल ने प्रमोद से मँगवाकर जमालगोटे का प्रयोग किया, जिससे वह दस्तों के कारण अधमरी जैसी हो गई।

मृणाल को इस हालत में पाकर उसके पति को बड़ा आश्चर्य और परेशानी हुई और वह उसे शीघ्र स्वास्थ्य-सुधार की आशा के बहाने अपने साथ ले गया।

मृणाल और उसके पति मोटर में बैठ गए। मोटर ने घर्र-घर्र की। फूफा ने समोद भाव से कहा–

"प्रमोद साहब! आदाब अर्ज है।" और प्रमोद खूँन का घूंट पीकर रह गया।"

इसके अनन्तर प्रमोद के माध्यम से कथावस्तु का टूटा हुआ तन्तु इस प्रकार आगे बढ़ाया गया है कि आरम्भ में कुछ दिन बाद यह सूचना मिली कि बुआ ने एक मृत कन्या को जन्म दिया। एक दिन उसने माँ से पूछा—माँ बुआ का कोई हाल आया है, अबकी छुट्टियों में मैं उनके पास जाऊँगा। प्रमोद के बार—बार पूछने पर माँ ने रूष्टता दिखाते हुए कहा—

"बात ? कह तो दिया कि कुछ भी बात नहीं है। वह अच्छी होगी और क्या ? अपना पढ़ना—लिखना कुछ भी नहीं, जब देखो बुआ—बुआ! तेरी बुआ मर गई। हाँ तो खबरदार, जो अब बुआ की बात मुझसे की।"

माँ के इस कथन को सुनकर प्रमोद सकते में आ गया। उसने अपने पिता से इस विषय में पूछा तो उन्होंने इस बात से तो इन्कार किया कि बुआ मर गई है किन्तु बताया कुछ नहीं। लम्बा समय बीत जाने पर प्रमोद को ज्ञात हुआ कि उसकी बुआ को पति ने त्याग दिया है—

"बहुत दिनों बाद जो बात मैंने जानी वह यह थी कि पति ने बुआ को त्याग दिया है। बुआ दुश्चरित्रा है और फूफा को मालूम है कि वह ऐसी सदा से है। छोड़ दिया है । इसका मतलब एकाएक समझ में नहीं आया। छोड़ कहाँ दिया है। वह खुद चली गई है, या किसी अलग स्थान पर उनको रख दिया गया है, या उसी घर में ही है और सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है? पता चला कि उसी शहर में एक अलग छोटे से घर में रख दिया है। यह भी ज्ञात हुआ कि फूफा ने तो कहा था मैके चली जाओ पर बुआ इसके लिए बिल्कुल राजी नहीं हुई। धमकाया गया, मारा-पीटा गया, पर उन्हें मरना मंजूर हुआ। हमारे यहाँ आना कबूल नहीं हुआ । तब फूफा खुद जाकर उन्हें अलग घर में छोड़ आए हैं।"

यूनिवर्सिटी से घर लौटते हुए प्रमोद बुआ की खोज में उस नगर के स्टेशन पर उतर गया, जहाँ मृणाल के रहने का समाचार था।

शहर का वह मुहल्ला जिसमें मृणाल रहती थी, इतना गन्दा था कि उसमें जाते हुए प्रमोद का जी घुटने लगा। वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी। बाहर एक बनिया दुकान लेकर वहाँ दिन में कोयले का व्यवसाय करता था। मैं कोठरी के द्वार पर पहले तो ठिठका, फिर हिम्मत बाँधकर, दरवाजा ठेलता हुआ अन्दर चला गया।

वह बुआ ही थी। क्या वही है? लेकिन वही थी । एक धोती में बैठी अंगीठी पर कोयले की आँच में रोटी सेंक रहीं थी।

मृणाल ने प्रमोद को पहचान कर भी उसको न पहचानने का बहाना करते हुए उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। प्रमोद द्वारा यह बताने पर भी कि बुआ मैं प्रमोद हूँ, मृणाल नहीं बोली। इसी प्रकार प्रमोद के यह पूछने पर भी उसने कुछ उत्तर नहीं दिया कि क्या मैं लौट जाऊँ? तभी वह पुरुष आ गया, जिसके साथ मृणाल रहती थी। उसने उस आदमी से कहा कि उनसे पूछो कि ये यहाँ क्यों आए हैं। जब प्रमोद यह कहकर लौटने लगा कि मैने कल से कुछ नहीं खाया है और मुझको जोर से भूख लग रही है, तो मृणाल ने उस आदमी से कहा–

"सुनते नहीं हो खड़े क्या हो, जाकर चार पैसे का दही ले आओ।"

प्रमोद बेतकुल्लफी से बुआ के समीप बैठ गया और अपनी ओर से उसको यह सूचना दी कि पिताजी का देहान्त हो चुका है और अब मैं बी०ए० में पढ़ रहा हूँ। उसने उससे घर चलने का आग्रह करते हुए कहा कि माता जी मुझको विवाह के लिए दबा रही है और तुम्हारे अभाव में मेरी ओर से बोलने वाला कोई भी नहीं हैं। यदि मेरे साथ जबरदस्ती हुई, तो मैं इसका दोष तुमको ही दूँगा।

धीरे-धीरे मृणाल ने प्रमोद से बातें करना आरम्भ किया। प्रमोद ने अब मृणाल से साथ चलने का आग्रह किया तो–

"सुनकर जैसे बिजली छू गई हो, चेहरा उनका एकदम फक्क हो पड़ा। जैसे लहू जम गया हो। निगाह नीचे डाल ली और कुछ न बोली। मैं भी चुप ही रहा। थोड़ी देर बाद मैंने कहा चलोगी नहीं?"

बुआ ने इस बार मानो अत्यन्त कठोर स्थिर भाव से मुझे देखते हुए पूछा—"कहाँ ?"

मैंने कहा—"कहाँ क्या? घर।"

बुआ ने उसी भाव से देखते रहकर कहा—"माँ ने कहा है?"

"मैं तो कह रहा हूँ।"

यह सुनकर मानो उसको धीरज बँधा। उनके चेहरे का कठिन भाव कुछ कम हो आया, बोलीं—"पहले शादी तो कर लो, तब घर बनेगा और उस समय कहने आओगे तब मेरे पास सुनने का भी वक्त होगा।"

प्रमोद ने जब स्वयं के बालिग होने का तथ्य प्रस्तुत करते हुए चलने का आग्रह किया तो मृणाल ने अपना अन्तिम निर्णय सुनाते हुए कह दिया—

"जरूर ले चलेगा, तो सुन, मैं नहीं जाऊँगी। मैं नहीं जा सकती। तुम मुझको नहीं जानते हो, मैं पति के घर को छोड़कर आ गई हूँ, पति हैं पर दूसरे पुरूष के सहारे पर रह रही हूँ। उसके साथ रह रही हूँ, तुम न जानो, मैं जानती हूँ। तुम अपनी आंखें ढँक सकते हो। लेकिन मुझसे अपना यह सारा पातक निगल जाने को नहीं कह सकते। फिर जिसको साथ लेकर पति को छोड़ आई हूँ, उनको मैं छोड़ दूँ? उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं त्यागा? उनकी करुणा पर मैं बची हूँ। मैं मर सकती थी, लेकिन नहीं मरी। मरने को अधर्म जानकर ही मैं मरने से बच गई। जिसके सहारे मैं उस मृत्यु के अधर्म से बची । जिसके सहारे मैं बची, उन्हीं को छोड़ देने को मुझसे कहते हो । मैं नहीं छोड़ सकती। पापिनी हो सकती हूँ पर उसके ऊपर अकृतज्ञ भी बनूं । नहीं प्रमोद, तुम सब लोग मुझे मरा हुआ क्यों नहीं मान लेते हो। क्यों मुझे तंग करते हो।"

मृणाल के इन तर्कों के आगे हार मानकर प्रमोद को अकेले ही लौट आना पड़ा। बातों में मृणाल ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वह पुरुष भी उसके साथ अधिक दिन तक नहीं रह पाएगा—

"तुम समझते हो यह आदमी जिसके साथ मैं रही हूँ, मुझे ज्यादा दिन रख सकेगा? नहीं, मैं जानती हूँ कि एक दिन यह मुझे छोड़कर चला जाएगा। तभी इस कोठरी से मेरे उठने का दिन होगा।"

प्रमोद के यह पूछने पर कि उस हालत में आप क्या करोगी?

मृणाल ने दृढ़तापूर्वक कहा—"वेश्यावृत्ति नहीं करने लगूँगी, इसका विश्वास रखो।" अपने कथन का स्पष्टीकरण करते हुए उसने आगे कहा—

"जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है। यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ, तन दे सकूँगी। शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसे? दान सभी का धर्म है । नहीं तो उसका और धर्म क्या है? उससे मन माँगा जाएगा, तन भी माँगा जाएगा। सती का आदर्श और क्या है—? पर उसकी बिक्री; न, न, यह न होगा।"

अपने पति-विच्छेद के विषय में भी उसने प्रमोद को बताया कि मैं उनकी इच्छानुसार ही उनसे अलग रहने लगी थी। उन्होंने मुझसे घृणा करना क्यों आरम्भ किया था, इसका कारण यह था कि मैंने यह सोचकर कि पतिव्रता को सच्ची होकर रहना चाहिए, शीला के भाई से आया पत्र मैंने अपने पति को दिखा दिया था। पत्रों को देखकर तुम्हारे फूफा बिगड़ उठे थे।

यही था तो मुझसे शादी क्यों की? कुछ देर बाद उन्होंने मुझसे कहा कि मैं हरामजादी हूँ। मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया। उस दिन से तुम्हारे फूफा मुझसे किनारा करते चले गये। मुझे तो अब नाराज होने का भी अधिकार नहीं था। काम करती थी और जो मिलता उससे पेट भरकर पड़ी रहती थी। पर ऐसा लगा कि उनकी आँखों में अब मैं कांटा हूँ। इसकी वजह भी मुझे दिखी कि मेरी उपस्थिति उनको खटकने लगी थी। यह देखकर मैंने एक रोज उनसे जाकर कह दिया कि आप चाहें तो मुझे घर से दूर कर सकते हैं । उन्होंने कहा, "हाँ जाओ, अपने मैके चली जाओ।" मैंने कहा, "वहाँ से तो मैं कटकर आ गई हूँ। आपकी नाराजी में मेरा वहाँ जाना धर्म नहीं है।" इस पर मृणाल को उसके पति ने उसी नगर में एक कोठरी लेकर उसमें पहुँचा दिया था। उस कोठरी में अकेली रहती हुई मृणाल की पूछताछ करने के लिए वह कोयले की दुकान पर बैठने वाला व्यक्ति आया करता था और वह उस रूप के दीवाने के साथ इस नगर में भाग आई थी और अपने साथ उस हजार-बारह सौ रुपए के माल को भी ले आई थी जो उसके पति ने दिया था।

मृणाल को प्रमोद को यह बताने में भी कोई लज्जा अथवा संकोच का अनुभव नहीं हुआ कि यदि यह व्यक्ति अपने परिवार से जा

मिलता है तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है–

"उसे अब चले ही जाना चाहिए। परिवार वहाँ अकेला है, वह मुझे नहीं झेल सकता ? मेरी कोशिश है कि यह मुझसे उकता जाए। अपनी अवस्था मैं जानती हूँ। पेट में बालक है। लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं है। मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूंगी। अब समय आ गया है कि इस बात की अक्ल आ जाए। अब उसका मोह छूट गया है कि मैं उसकी सर्वस्व नहीं हूँ। मैं बस एक बदजात व्यभिचारिणी स्त्री हूँ।"

अपने विषय में मृणाल जो कुछ कहती है, पाठकों को भी इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि वह वास्तव में ही एक व्यभिचारिणी और वाचाल स्त्री है। इस पर भी पतिव्रत धर्म की डींग मारते हुए कहती है–

"प्रमोद इसी से कहती हूँ कि जब तक आस है, तब तक वह पुरुष अन्य नहीं है। मेरा सब कुछ उसका है। उसकी सेवा में त्रुटि नहीं कर सकती। पतिव्रत धर्म तो यही कहता है।"

बेचारा प्रमोद क्या कहता, वह मन मसोसकर रह जाता है। उसके अन्तर्मन में द्वन्द्व उठ खड़ा होता है।

"इस बुआ का मैं क्या बनाऊँ। इसकी कोठरी में ही मैं अपना क्या बनाऊ? यहाँ सब कुछ उलट-पुलट गया मालूम होता है। पति-गृह को छोड़कर यहाँ गन्दे व्यभिचार में रहने वाली नारी पतिधर्म की बात करती है और उसकी बातों को सुनता हुआ एक पढ़ा-लिखा मुझ जैसा समझदार युवक उस नारी को लाँछित नहीं करता; बल्कि उसके प्रति और खिंचकर रह जाता है। ओह ! असह्य है।"

प्रमोद जब उससे यह पूछता है कि क्या वह उसके विवाह में नहीं आएगी? तो मृणाल सामाजिक नियमों की दुहाई देकर न आने का निश्चय व्यक्त करती है। जब प्रमोद यह कहता है कि मैं समाज की चिन्ता नहीं करता। तो सामाजिक नियमों को तोड़ने वाली मृणाल उसको ऐसा करने से पूर्णतः मना करती है।

घर लौटने पर प्रमोद की माता को जब यह ज्ञात हुआ कि वह अपनी बुआ से मिलकर आ रहा है तो वे बड़ी रूष्ट हुईं। और उससे उस कुल डुबाने वाली की चर्चा तक सुनने से इन्कार कर दिया। कुछ समय पश्चात् प्रमोद बुआ की खोज में उस नगर में गया भी, किन्तु तब तक वह उस स्थान को छोड़कर जा चुकी थी । इधर-उधर पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह आदमी के चले जाने पर एक-डेढ़ महीने तो वहीं रही थी। किन्तु उसके दिन पूरे होने को थे । अस्पताल जाकर पूछताछ करने पर प्रमोद को ज्ञात हुआ कि पाँच-छह माह पूर्व यहाँ मृणाल नामक स्त्री भर्ती हुई थी और उसने एक लड़की को जन्म दिया था। उसने अस्पताल में कुछ काम भी माँगा था, किन्तु धर्म-परिवर्तन करके इसाई बन जाने की शर्त रखने पर वह अस्पताल छोड़कर न जाने कहाँ चली गई थी, यह किसी को ज्ञात नहीं था।

प्रमोद के विवाह की बात पक्की होने से पूर्व उसको लड़की देखने के लिए बुलाया गया था। लड़की वालों के यहाँ पहुँचकर प्रमोद ने देखा कि गृहपति के बच्चों को पढ़ाने वाली महिला उसकी बुआ मृणाल ही है। मृणाल ने उसको देखकर भी न देखने का भाव बनाया । बातचीत में प्रमोद ने उसके घर का पता ज्ञात किया और उससे वहाँ पर जाकर मिला। वहाँ पर उसकी मृणाल से जो वार्तालाप हुई उससे उसको वह वृत्तान्त ज्ञात हो गया जिससे वह कोयले की दुकान वाला व्यक्ति उसको छोड़कर चला गया था।

उस गृहपति की लड़की राजनन्दिनी मृणाल की मित्र बन गई थी और उसके विवाह की मृणाल को तीव्र लालसा भी थी। किन्तु अब वह विवाह में शामिल होने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी।

अन्तिम बार जब मैं उन्हें मिला तब वकील था। उनकी हालत दयनीय थी। वह बीमार थीं और एक कोठरी में पड़ी थीं। औषधि और अर्थ की कोई व्यवस्था न थी; आस-पास के कुछ लोगों की सहानुभूते उन्हें प्राप्त थी।

इस बार प्रमोद को मृणाल ने स्वयं पत्र लिखकर बुलाया था। प्रमोद की माता जी का देहान्त होने पर मृणाल ने उसको पत्र में लिखा था—

"प्रमोद, माता सौभाग्य होती है। मैं तो जन्म की वंचिता ठहरी। पर उन स्वर्गवासी आत्मा की सेवा मैं नहीं कर सकी, इसकी मुझे ग्लानि है। मेरे मन में यह विचार था कि एक बार उनके जीते जी ही उनका आशीर्वाद पाऊँगी, पर वह होने को न था।"

इस पत्र में उसने प्रमोद को यह भी लिखा था कि तुमने पिछली जगह पर चिट्ठी और तार क्यों भेजे थे? वे सब बेकार थे। पत्र में आगे लिखा था—

"तुम आओगे तो आ जाना, लेकिन मुझसे किसी बात की उम्मीद न करना। जिन लोगों के बीच बसी हूँ वे समाज की जूठन हैं और कौन नहीं जानता कि वे समाज की जूठन होने योग्य भी नहीं हैं। लेकिन आखिर तो इन्सान हैं।"

प्रमोद इस स्थान पर जाकर अपनी बुआ से मिला तो उसे बड़ी निराशा हुई, उसने देखा कि उसकी बुआ जहाँ रहती हैं वहाँ नगर की सड़ाँध रहती है—

"वहाँ रहती थीं अधेड़ अवस्था की वेश्याएँ, बेकार मजबूर, पेशेवर भिखमंगे, कानून की आँख और चंगुल से बचकर छिपे-उघड़े काम करने वाले उचक्के लोगों के रहने की वह जगह थी। कोई हया-शर्म वहाँ न थी और उसकी बुआ की खाट के पास भी उनमें आपस में भद्दे इशारे हुए बिना न रहते थे।"

प्रमोद को उस दशा में विशेष लज्जानुभव हुआ कि वे आदमी उसको उसकी बुआ का कोई पुराना प्रेमी समझ रहे हैं। प्रमोद ने इस बार भी बुआ से साथ चलने का आग्रह किया तो मृणाल नें उससे यह आग्रह किया कि उसके पास जितना अधिक रुपया हो वह मृणाल को सौंप दे। प्रमोद के यह पूछने पर कि रुपयों का क्या करोगी? मृणाल ने उत्तर दिया—

"क्या करूँगी? यह तो अभी नहीं जानती हूँ। पर पहले तो मेरे चित्त का भरम मिट जाएगा कि मैं तेरी सहायता नहीं चाहती हूँ। फिर रुपया छोड़ने में तेरा अपना भी भला है। खूब कमा और कमा कर सब इस गड्ढे में ला पटका कर। सुना कि नहीं? रुपया के जोर से यह नर्क-कुण्ड स्वर्ग बन सकता है, ऐसा तो मैं नहीं जानती, फिर भी रुपया कुछ न कुछ काम आ सकता है।"

प्रमोद ने बुआ की बात पर ध्यान न देकर उसको अस्पताल में भरती कराने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु मृणाल ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। हारकर प्रमोद अपने एक परिचित स्थानीय वकील को बुआ की देखरेख के लिए रुपए देकर लौट आया था। कुछ वर्ष बाद प्रमोद सोचता है–

"उस बात को सत्रह से ऊपर ही वर्ष हो गए हैं। आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय मेरे लिए यह है कि किस अमानुषिकता के साथ ये सत्रह के सत्रह वर्ष मैं बुआ को देखे बिना काट गया? वह बुआ जिन्होंने बिना लिए दिया। जिन्होंने कुछ किया तो मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद अब मेरे भीतर अङ्गार-सी जलती है। जिनका जीवन यहि कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा। धुआँ उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही। उन्हीं बुआ को एक तरफ डालकर मैं किस भाँति अपनी प्रताड़ना करता रहा?"

प्रमोद को इस तथ्य से ऐसी आत्मग्लानि होती है कि वह अपनी मर्जी से त्यागपत्र दे देता है और उसके त्यागपत्र के साथ ही उपन्यास की कथावस्तु समाप्त हो जाती है–

'बुआ तुम गईं'। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरम्भ-समारम्भ भी छोड़ दूँगा। औरों के लिए रहना तो शायद नये सिरे से मुझसे सीखा न जाए। आदतें पक गई हैं पर अपने लिए तो उतनी ही स्वस्थता से रहूँगा जितना अनिवार्य होगा, यह वचन देता हूँ।

भगवान् तुम मेरी बात सुनते हो। वैसे चाहे न भी दो पर वचन तोड़ूँ तो मुझे नरक अवश्य देना। ह० एम० दयाल ता० ३–४

पुनश्च– इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी से अपना त्यागपत्र मैंने दाखिल कर दिया। एम० डी० ४–४

प्रश्न२-त्यागपत्र नामक उपन्यास की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।

उत्तर२–त्यागपत्र जैनेन्द्र के उत्कृष्ट मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों

में से एक है। प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने मृणाल के माध्यम से एक नारी के अन्तर्मन की ग्रन्थियों को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न किया है। मृणाल द्वारा पतिव्रत धर्म की जो मनमानी परिभाषा स्वीकार की जाती है, जिसके अनुसार वह सामाजिक नियमों की अपेक्षा अपने विवेक को अधिक महत्त्व प्रदान करती है—यहीं तथ्य उसके जीवन के विकास का निमित्त बन जाता है।

पूर्ण दीप्ति शैली का प्रयोग— इसमें घटनाओं का वर्णन उस रूप में नहीं किया गया है जिस प्रकार परम्परागत उपन्यासों में घटनाओं का विकास हुआ करता है। कथानक का आरम्भ उपन्यास की नायिका की मृत्यु की घटना के साथ किया गया है जो सामान्य कथाशिल्प के उपन्यासों में अन्तर्मन हुआ करती है। प्रमोद इस अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त चित्रित किया गया है—

"नहीं भाई, पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून के तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की जरूरत को भी जानता हूँ, इसलिए कहता हूँ कि जिसके ऊपर राई-रत्ती फार्लूम नाप जोखकर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें, मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थी, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आँसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह-तरह की प्रतिभा की बाढ़ खड़ी करके खूब मजबूती से उसे जमा लिया है। कोई अपवाद उसको पारकर मुझ तक नहीं आ सकता? पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद अब मुझे चैन लेने देगी? उनके मरने की खबर पाकर अभी बैठा हूँ। इतना तो उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था? याद किया होगा, यह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

प्रमोद के उपर्युक्त अन्तर्लाप द्वारा कथावस्तु का उद्‌घाटन अथवा आरम्भ किया गया है, जिससे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि प्रमोद की

बुआ की मृत्यु हो चुकी है। वह पापिष्ठा थीं अथवा नहीं, यह प्रश्न भी इससे उभरकर पाठकों के सामने नाचने लगता है— क्योंकि इस विषय में स्वयं प्रमोद ही आश्वस्त नहीं है।

कथा के इस प्रकार उपस्थापन के पश्चात् प्रमोद भावनाओं और विचारों में खोकर अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करता है और उसके इस विगत जीवन के साथ ही उपन्यास की नायिका मृणाल का जीवन भी जुड़ा हुआ है। अपनी वंशपरम्परा का परिचय देते हुए प्रमोद स्पष्ट करता है कि उसकी बुआ उससे चार-पाँच वर्ष बड़ी थी और माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह प्रमोद के माता-पिता के संरक्षण में पाली-पोसी गई थीं।

पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही प्रमोद ने मृणाल के अप्रतिम सौंदर्य पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है–

"बुंआ का तब का रूप सोचता हूँ तो दंग रह जाता हूँ। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। जब देता है तब कदाचित् उसकी कीमत भी वसूल लेने की मन–ही–मन नीयत उसकी रहती है। पिताजी तो बुआ की मोहिनी सूरत पर रीझ-रीझ जाते थे।"

इस अवतरण द्वारा एक ओर तो उपन्यासकार ने मृणाल की सुन्दरता पर प्रकाश डाला है, जबकि दूसरी ओर विधाता द्वारा सौन्दर्य देकर उसकी कीमत वसूलने की बात कहकर, पाठकों के अन्तर्मन में यह जिज्ञासा जाग्रत कर दी है कि मृणाल के जीवन में भी अवश्य ही कुछ अनहोनी घटिंत होनी चाहिए, तभी प्रमोद ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

इसके अनन्तर उपन्यासकार ने पूर्णदीप्ति शैली के माध्यम से ही उन घटनाओं का चित्रण किया है, जिनसे प्रमोद और मृणाल की घनिष्ठता पर प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही इन घटनाओं का उद्घाटन भी होता गया है कि किस प्रकार मृणाल शीला के भाई के सम्पर्क में आती है और उससे मिलने-जुलने में होने वाली देर के कारण घर पर भावज से पिटती ही नहीं है; अपितु उसकी पढ़ाई छुड़वाकर उसका

विवाह कर दिया जाता है। आगे की घटनाओं पर प्रकाश भी प्रमोद के वार्तालाप या चिन्तन के माध्यम से ही डाला गया है, और उसके स्व-पति से विच्छेद, एक पुरुष के साथ भागकर दूसरे नगर में आ रहने; उसको भी छोड़ देने पर ट्यूशन पढ़ाकर गुजारा करने; वहाँ से भी उखड़कर गन्दे लोगों की बस्ती में रहने की घटनाएँ भी इसी प्रकार विकसित हुई हैं। अतः कथानक-शिल्प की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास की प्रथम विशेषता तो यही है कि उस युग में जब मुंशी प्रेमचन्द्र कथा-जगत पर छाए हुए थे और उन्हें उपन्यास-सम्राट कहकर गौरवान्वित किया जा रहा था, जैनेन्द्र ने उनकी लीक से हटकर एक दूसरे प्रकार का कथानक अपनाया और कथा-योजना में भी एक नूतन प्रकार के कथाशिल्प का प्रयोग किया था।

कथानक में विश्वसनीयता का समावेश – वैसे 'त्यागपत्र' की कहानी एक सर्वथा काल्पनिक कहानी ही प्रतीत होती है, किन्तु उपन्यासकार ने ऐसे कौशल से काम लिया है कि यह हमको किसी सच्ची घटना पर आश्रित कहानी प्रतीत होती है। इस उद्देश्य के लिए उपन्यासकार ने कृति के आरम्भ में ही निम्नांकित टिप्पणी देकर पाठकों के मन में यह भ्रान्ति उत्पन्न करने की चेष्टा की है कि यह एक सच्ची घटना पर आधारित उपन्यास है–

मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता – आलोच्य उपन्यास के कथानक-शिल्प की एक अन्य विशेषता इसमें स्थल-स्थल पर मनोवैज्ञानिक चित्रण को स्थान देना है। एक आलोचक ने उचित ही लिखा है कि "त्यागपत्र उपन्यास की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र मनोविज्ञान का आश्रय लिया गया है। यों तो प्रत्येक उपन्यासकार अपने उपन्यास में स्वाभाविकता के रक्षार्थ मानव-मन की गुत्थियों को पकड़ता है और उनका विशलेषण करता है। मानव की कुँठाए क्या है? उनके कारण क्या हैं और अनुपम कार्य क्या है? सम्पूर्ण उपन्यास इसी पर आधारित है और

साथ ही यह भी दूसरा मुख्य कार्य-विषय है कि नारी चाहे कितने मृ
पतन की ओर क्यों न चली जाए, उसका सहज-स्वाभाविक अहं क
नहीं मरता। मृणाल के माध्यम से जैनेन्द्र जी ने इस अहंभावना के
अत्यन्त सशक्त चित्रण किया है।"

"यौन कुंठाओं के चित्रणं में जैनेन्द्र जी फ्रायड के यौन-सिद्धान्त क
विशेष रूप से प्रभावित है। फ्रायड का मत है कि मूल रूप में वास
प्रत्येक नर-नारी के मन में विद्यमान रहती है, कुछ उसे परिष्कृत रूप
व्यक्त करते हैं। और कुछ उसे मूल रूप में। यहाँ तक कि बच्चों त
में यह वासना-भावना प्रधान होती है। पुरुष का नारी के प्रति और न
का पुरुष के प्रति अवस्था में विशेष आकर्षित होना तो स्वाभाविक है
इसके अतिरिक्त भी अवचेतन में यही काम-भावना प्रत्येक व्यवस्था
विद्यमान रहती है। मृणाल का शीला के भाई के प्रति और शीला का भ
मृणाल के प्रति आकर्षित होना—यह तो अवस्था-जन्य काम-भावना
जैनेन्द्र जी ने फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित होकर अन्य अवस्थाओं
भी काम-वासना दिखायी है। मृणाल तथा प्रमोद में बुआ-भतीजे
सम्बन्ध है, अवस्था में भी अन्तर है, किन्तु फिर भी लिंगवैषम्य होने
कारण दोनों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है। प्रमोद मृणाल
प्रत्येक कार्य करने को तत्पर है, उसकी प्रिय वस्तु उसे भी अच्छी लग
है— शीला का भाई उसे भी अच्छा लगना इसका एक उदाहरण है अ
वह प्रत्येक उचितानुचित कर्म मृणाल की प्रसन्नता के लिए करता जा
है, महज एक आकर्षण के वशीभूत होकर ही।"

प्रमोद के सन्दर्भ में हम इस आलोचक से भिन्न मत रखते
प्रमोद द्वारा अपनी बुआ के सभी कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक करने के
में लिंग आकर्षण का अनुभव मानना दूर की कौड़ी लाने का प्रयास-म
है। प्रमोद बच्चा है और बच्चे से ही कोई भी प्रेम का व्यवहार करता
वह उसके कार्य प्रसन्नतापूर्वक कर दिया करता है। प्रमोद को भी चूँ

मृणाल भली प्रकार लाड़-प्यार करती है, इसीलिए वह उसके कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक करता रहता है। जहाँ तक मृणाल के प्रति लिंग-आकर्षण के कारण ही प्रमोद को शीला के भाई के अच्छा लगने का सम्बन्ध है, कामाकर्षण की दृष्टि से इसकी विरोधी स्थिति मिलती है, अर्थात् प्रमोद का उससे घृणा करना अधिक मनोवैज्ञानिक सत्य होता है। प्रमोद को शीला के भाई के अच्छा लगने का मूल कारण वही लाड़-प्यार और टॉफी आदि दिलाया जाना है, जिसका प्रदर्शन शीला का भाई प्रेम-पत्र लाने में प्रमोद के प्रति करता है। उदाहरणार्थ यह अवतरण अवलोकनीय है, जो हमारे कर्त्तव्य की पुष्टि करता है।

"अगले रोज एक कागज लेकर शीला के यहाँ भेजा गया। मैं शीला को जानता था, उसके कोई बड़े भाई हैं, वह मैं नहीं जानता था। कागज उन्हीं के हाथों में देने को कहा गया था। शीला के भाई मुझे बहुत अच्छे लगे। मैंने जब यह कागज उन्हें दिया तब उसे लेकर वह मेरी उपस्थिति को इतना भूल गये कि मुझे अपना अपमान मालूम हुआ। लेकिन फिर उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम किया, चूमा, गोद में लिया। इस प्रकार प्रकारान्तर से मानों शीला का भाई मृणाल को ही चूमने की इच्छा, पूर्ति कर रहा था। उसे कन्धे पर बिठाया और तरह-तरह की खाने की चीजें दीं। शीला भी मुझको अच्छी लगी। मेरा जी हुआ कि कोई बहाना हाथ लगे तो मैं यहाँ रोज आया करूँ। शीला के भाई ने भी एक चिट्ठी लिखकर मेरी जेब में रख दी। फिर कहा—तुम्हारा नाम क्या है। प्रमोद ! बड़े बहादुर हो तुम। यह कह कर धरती से उठाकर मुझे चूम लिया। और फिर कहा— यह कागज अपनी बुआ को ही देना है ना।"

उपर्युक्त उदाहण से स्पष्ट है कि शीला का भाई प्रमोद को इसीलिए अत्यधिक प्रेम करता है; क्योंकि वह उसकी प्रेयसी का पत्र लेकर आया है। उसको चूमकर वह प्रकारान्तर से विहारी की नायिका द्वारा—

"प्रिय चून्यो मुँह चूम"

की तरह मृणाल को ही चूमने की अपनी इच्छा की पूर्ति करता है।

इसके साथ ही चूँकि अपना प्रेमपत्र उसे प्रमोद के हाथों मृणाल त
पहुचाना है; अतः वह उससें पढ़ने-लिखने के बारे में पूछकर उससे अप
परिचय बढ़ाता है और उसकी वीरता की प्रशंसा करके उसके हा
अपना प्रेमपत्र भिजवाने का प्रयोजन सिद्ध करता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "त्याग पत्र का कथान
एकपक्षीय रूप में सभी कथानकगत विशेषताओं से सम्पूर्ण है। इसमें
तो व्यर्थ के विवरणों की भरमार है और न कथानक को लम्बा करने
यत्न है, अपितु अनेक घटनाओं का संकेत देकर काम चलाने लायक
लिया गया है। परिणामतः कथा-विकास में सहजता है, अभिव्यक्ति
संक्षिप्तता है, कथाविकास में मनोवैज्ञानिकता है तथा गहन चिन्तन
विलक्षणात्मक है।"

**प्रश्न-३ सुप्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार का जीवन-परिच
देते हुए इनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिये।**

उत्तर- जैनेन्द्र कुमार का जन्म जिला अलीगढ़ के कोड़ियागंज
हुआ था। जैनेन्द्र के परिवार का परिचय प्रदान करते हुए महात
भगवानदीन ने लिखा है–

"रामदेवी बाई के कुल मिलाकर छः बच्चे हुए। तीन छोटी उम्र
ही चल बसे और तीन आज तक जीवित हैं। दोनों लड़कियाँ बड़ी हैं औ
लड़का उनसे छोटा। यही छोटा लड़का जैनेन्द्रकुमार के नाम से प्रसि
है।" जैनेन्द्र कुमार के बचपन का नाम आनन्दीलाल था। उनका जैनेन
नामकरण तो गुरुकुल में किया गया। आपकी आरंभिक शिक्षा ब्रह्मचा
आश्रम जैन गुरुकुल में प्रारम्भ हुई थी। इस गुरुकुल की हस्तिनापुर
आपके मामा द्वारा ही स्थापना की गई थी।

सन् १९१८ में यह गुरुकुल किन्हीं कारणों से विघटित हो गय
अतः सात वर्ष के अध्ययन के उपरान्त आपकी शिक्षा का क्रम भंग
गया। प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में आपने पंजाब मैट्रिक की परी
उत्तीर्ण की और इण्टरमीडिएट की पढ़ाई के लिए आप बनार
विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गये। राष्ट्रीय आंदोलन छिड़ने पर आप

रूझान भी इस राष्ट्रीय आंदोलन की ओर बढ़ता गया और सन् १६२०–२१ में आप अपना अध्ययन त्याग कर दिल्ली आ गए। यहाँ पर आपने लाला लाजपतराय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में प्रवेश लिया, किन्तु इस अध्ययन में भी आप का मन नहीं लगा। अध्ययन में जैनेन्द्र कुशाग्र बुद्धि के छात्रों में से एक थे और कक्षा में प्रायः प्रथम स्थान प्राप्त करते थे। हाँ अपने सहपाठियों से बोलने-चालने में आप अत्यधिक संकोच का अनुभव करते थे। अपने साथियों में उनकी संकोच वृत्ति प्रसिद्ध थी। अध्ययन समाप्त होने पर जैनेन्द्र जबलपुर में माखन लाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आये, जो कर्मवीर का संम्पादन भार सम्हाल रहे थे। यहीं पर उनका परिचय उस काल की प्रसिद्ध कार्यकर्त्री और कवयित्री सुभद्राकुमारी 'चौहान' से भी हुआ, जिनका आप पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। श्रीमती चौहान की प्रेरणा से आपने भी काँग्रेस कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य आरम्भ किया और सन् १६२१ में आपने अहमदाबाद के काँग्रेस अधिवेशन में भाग भी लिया। किन्तु तभी आपकी माता आपको वापिस दिल्ली ले आयीं और आप जेल जाने से वंचित रह गये।

" २३–२४ वर्षों तक दुनिया में बिताकर भी क्या उस द्वार की टोह पा सका था जिसमें से रुपये का आवागमन होता है। मुझे तो लगा कि जैसे मेरे निकम्मेपन की भी कुछ कीमत है।

सन् १६२६ में जैनेन्द्र का 'परख' शीर्षक उपन्यास छपने पर उनकी प्रसिद्धि फैलने लगी। उनके इस उपन्यास की उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद ने भी प्रशंसा की। इसी वर्ष उनकी माता ने उनसे विवाह कर लेने का आग्रह किया तो वे अपनी माता की भावनाओं की अवहेलना नहीं कर सके। यह विवाह उन्हें इस दृष्टि से बड़ा शुभ सिद्ध हुआ कि अगले वर्ष उनको 'परख' पर ५०० रु. का अकादमी पुरस्कार मिल गया। इस राशि नें जो आजकल के लगभग ५००० रु. के बराबर है, उनकी आर्थिक दशा को सुधारने में पर्याप्त योगदान किया।

जैनेन्द्र कुमार गांधी जी द्वारा संचालित 'नमक बनाओ' तथा

डांडी-यात्रा, आंदोलनों में भाग लेने के कारण इस बार पुनः जेल गये हाँ शीघ्र ही गान्धी-इर्विन पैक्ट हो जाने के कारण इनको जेल से दस पन्द्रह दिनों के अन्दर ही मुक्त कर दिया गया। अभी तक जैनेन्द्र कांग्रेस के विधिवत सदस्य नहीं बने थे, अतः उन्होंने सन् १६३२ में इन्द्र विद्यावाचस्पति से कांग्रेस का साधारण सदस्य बनाने की इच्छा व्यक्त की। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने, जो उन दिनों दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के मुख्य कार्यकर्ता थे —जैनेन्द्र को कांग्रेस का साधारण सदस्य बनाने के स्थान पर दिल्ली के कांग्रेस आन्दोलन का डिक्टेटर बना दिया। इस बार उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और वे सात महीने तक कारावास में रहे।

जेल से मुक्त होने के उपरांत जैनेन्द्र पुनः कांग्रेस-आंदोलन से अलग हो गये, जिसके दो कारण बताये जाते हैं। इनमें से पहली घटना सन् १६३० की है। इस घटना के अनुसार जब सन् १६३० में दिल्ली में काश्मीरी गेट से होकर जुलूस निकाला जा रहा था तो इस जुलूस पर पुलिस ने लाठी-चार्ज किया। इस लाठी-चार्ज में हुये रक्तपात को देखकर जैनेन्द्र के मन में भय का संचार हुआ और वे जुलूस से भाग खड़े होते किन्तु उनमें भागने का भी साहस नहीं था।

राजनीतिक जीवन से विच्छिन्न होकर जैनेन्द्र साहित्यिक जीवन की ओर प्रवृत्त हुए। अब वे अपनी साहित्य-साधना को अधिक समय भी दे सकते थे। सन् १६३५ में उन्होंने भारतीय साहित्य परिषद की स्थापना का सुझाव दिया। उनके इस सुझाव के पीछे उनकी यह भावना क्रियाशील थी कि भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों का एक ऐसा संगम होना चाहिये जिससे साहित्यकारों को भारत की विभिन्न भाषाओं में लिखे जाने वाले साहित्य का परिचय मिल सके और वे पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा भारतीय साहित्य को और भी अधिक समृद्ध बना सकें। इस सुझाव के अनुसार ही भारतीय साहित्य परिषद की स्थापना की गयी और महात्मा गांधी को इस परिषद का अध्यक्ष बनाया गया। सन् १६३६ में परिषद का प्रथम अधिवेशन नागपुर में हुआ।

काका साहब कालेलकर और के. एम. मुंशी भारतीय साहित्य परिषद के मंत्री थे। अपने घनिष्ठ संबंधों के कारण जैनेन्द्र मुंशी प्रेमचंद द्वारा प्रकाशित 'हंस' के सह-संपादक बने और मुंशी प्रेमचंद का निधन हो जाने पर वे कुछ दिनों तक इसका सफलतापूर्वक संपादन करते रहे।

साहित्य-साधना—

सन् १९३९ तक जैनेन्द्र का साहित्यिक-जीवन का एक प्रकार से स्थिर हो चुका था। सन् १९३७ में उनका तीसरा उपन्यास 'त्यागपत्र' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की जहाँ प्रचुर सराहना की गयी वहीं उनपर अनैतिकता का प्रचार करने का आरोप भी लगाया गया।

सन् १९३९ में उनका चौथा उपन्यास 'कल्याणी' प्रकाशित हुआ। इस समय तक उनके पाँच कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके थे, जिनके नाम हैं —फाँसी, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, एक रात और दो चिड़ियाँ। अपनी इन रचनाओं के कारण जैनेन्द्र हिंदी-जगत में एक मौलिक कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। हाँ, अभी तक वे आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त नहीं हो पाए थे और उन्हीं के उद्‌गारों के अनुसार 'बेफिकी की रोटी तो कभी नहीं मिली'।

सन् १९५१ में श्री जैनेन्द्र के पुत्र दिलीप कुमार के द्वारा पूर्वोदय प्रकाशन नामक संस्था की स्थापना की गयी और इस प्रकाशन संस्था द्वारा जैनेन्द्र की रचनायें प्रकाशित की जाने लगी। इससे जैनेन्द्र भी पुनः तन्मयतापूर्वक साहित्य-साधना की ओर उन्मुख हुए और उनकी लेखनी से अनेक कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध निःसृत होने लगे। उनके द्वारा साहित्य क्षेत्र में पुनः आने के बाद से उनकी यह साहित्यिक यात्रा अविराम गति से चलती रही है और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनायें अब भी प्रकाशित होती रहती हैं। आजकल जैनेन्द्र जी दिल्ली के दरियागंज में रहते हैं।

प्रमुख रचनाएं -

जैनेन्द्र के रूप में हिंदी जगत को एक ऐसे कलम के धनी

साहित्यकार की प्राप्ति हुई है जिसने निबन्ध, कहानियाँ, उपन्यास तथा नाटकों की रचना करने के साथ साथ अनुवादक और संपादक के रूप में भी हिंदी की सेवा की है।

प्रश्न४- भाषा-शैली की दृष्टि से 'त्यागपत्र' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– 'त्यागपत्र' की भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल एवं विशुद्ध हिन्दी है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ में उर्दू के चालू शब्दों और मुहावरों का प्रयोग हुआ है। कुछ स्थलों पर अँग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। वर्णनात्मक शैली की भाषा सरल और मिली-जुली है। एक उदाहरण लीजिए। इसमें उर्दू के शब्दों का अधिकता से प्रयोग हुआ है।

फूफा ने कहा– आपने उन्हें समझा तो दिया होगा। ज़रा सेहत का ख्याल रखा करें और दुनियाँ का लिहाज़ रखना चाहिए। आप जानिए; बहू-बेटियों की चलन की रीति-नीति हुआ करती है। अपने तो वही पुराने अकीदें हैं। अपने यहाँ कुल-रीति चला आता है, वह न निभा तो फिर क्या रह गया। ज़रा ये बातें समझा देना चाहिए। मैं तो अपनी तरफ से थोड़ा-बहुत कहता हूँ। लेकिन आप जानिए, आपकी बात का मुझसे कहीं अधिक असर होगा।

निम्न उदाहरण में संस्कृत की विशुद्ध तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

ज्ञानीजन कह गए हैं कि परम कल्याणमय ही इस सृष्टि में अपनी परम लीला का विस्तार कर रहा है। मैं मान लेता हूँ कि ऐसा ही है। न मानूँ तो जियूं कैसे? पर रह-रह कर जी होता है कि पुकार कर कहूँ कि हे परम कल्याणमय तेरी कल्याणी लीला को मैं नहीं जानता हूँ, फिर भी रोने-बिलखने की आवाज तो चारो ओर से मेरे कानों से भरी आ रही है। यह क्या है, हे जगत्पिता ! तेरी लीला के नीचे यह सब आर्तनाद क्यों है।

'त्यागपत्र' आत्मपरक शैली में है। सारी कथा प्रमोद ने आत्म-कथन के रूप में प्रथम पुरुष में उपस्थित की है। बीच-बीच में भावात्मक, कथोपकथन की नाटकीयता, तथा प्रश्न शैली और अंत में मृणाल के लंबे पत्र के रूप में पत्र-शैली का भी प्रयोग हुआ है। आत्मालोचन तथा पुण्य-पाप की आलोचना में लेखक ने अनेकों पश्न उठाए हैं, जिससे इस शैली में रोचकता आ गयी है।

मुहावरों और कहावतों का प्रयोग- मुहावरों और कहावतों के यत्र-तत्र प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य और चारुता आ गयी है। कुछ उदाहरण लीजिए –

१. आँखें फाड़ कर क्या देख रहा है ? २. चेहरे का रंग उतरा-सा क्यों है। ३. धक्का देकर पराया बना दिया। ४. असमंजस में पड़ गई। ५. घूर-घूर कर देखता रहा। ६. सौ दवाओं की एक दवा है, बेफिक्री। ७. कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहा है। ८. जाको राखे साइयां उनको मारना आसान नहीं है। ९. फटी आँखों से देखना। १०. जान खाए डालता है। ११. संकते में रह गया। १२. बिजली छू गयी हो। १३. अपनी आँखें ढंक लो। १४. चार आँसू बहाना। १५. रोंगटे खड़े होना।

सरल और प्रवाहमयी भाषा - 'त्यागपत्र' की भाषा बड़ी सरल और सुबोध है। लेखक ने छोटे-छोटे वाक्यों और बोलचाल में अत्यंत सरल शब्दों का प्रयोग करके भाषा में ऐसी प्रवाहता दी है कि इसमें भावरम्यता तथा सरलता सर्वत्र छलकती दिखाई देती है। इस सरलता के कारण भी भाषा लहरीली और प्रवाहमयी बन गयी है। एक उदाहरण लीजिए।

"नहीं आना चाहिए। मैं तो तुमको अपनी ओर से भी यही समझाने वाली थी। जो समाज में हैं, समाज की प्रतिष्ठा कायम रखने का जिम्मा भी उनपर है। वह उनका कर्त्तव्य है–

प्रमोद सहायता की मैं भूखी नहीं हूँ क्या ? तुमसे ही वह सहायता न लूंगी तो किससे लूंगी। लेकिन सहायता का हाथ देकर क्या मुझे ऊंचे वर्ग में जो बिठाने की इच्छा है? तो भाई मुझे माफ कर दो। वैसी मेरी अभिलाषा नहीं।

विचार प्रवृत्त कला- सरल होने के साथ-साथ 'त्यागपत्र' की भाषा गम्भीर और समर्थ भी है। जैनेन्द्र जी का व्यक्तित्व और दार्शनिक चिन्तन भाषा पर छाया हुआ है। जैनेन्द्र जी अपने-आप को दार्शनिक चोले में प्रकट करते हैं, इसलिये भी दार्शनिक चिन्तन का रंग चढ़ा हुआ है। पति द्वारा परित्यक्ता मृणाल अपने अनैतिक आचरण का समर्थन करती हुई कहती है।

पति को मैनें नहीं छोड़ा, उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री–धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। इसको स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को चाहिए कि उसे जब पति नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उसपर डाले रहे। वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा मैं तेरा पति नहीं हूँ। तब मैं किस अधिकार से अपने को उनपर डाले रहती ? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है।

समर्थ एवं लालित्यपूर्ण भाषा – लेखक ने दार्शनिक पुट होने पर भी 'त्यागपत्र' की भाषा में रूखापन नहीं आने दिया है। कहीं भी उसका प्रवाह अवरुद्ध नहीं हुआ। भाषा में लालित्य और प्रवाह प्रचुर मात्रा में है। साथ ही वायु के समान प्रवहमान सूक्ष्म एवं जटिल मनोभावों को भी शब्दबद्ध करने की क्षमता के कारण भाषा बहुत ही समर्थ बन गयी है। जीवन के निम्न दार्शनिक चिन्तन में भाषा का लालित्य और प्रभाव का सामर्थ्य देखते ही बनता है।

घटनाएं होती हैं, होकर चली जाती हैं। हम जीते हैं और जीते-जीते एक रोज मर जाते हैं। जीना किसी और हौसले से आरम्भ करते हैं, पर उस जीवन के इस किनारे आते-आते कैसी ऊब, कैसी उकताहट जी में भर जाती है। मैं इस लीला पर, इस प्रहेलिका पर सोचता रहता हूँ। कुछ पार नहीं मिलता, कुछ भेद नहीं पाता।

समन्दर है। अपनी नन्हीं कागज की डोंगी लिये हम भी उसके किनारे-किनारे खेने के लिए उतरते हैं। पर किनारे ही कुशल है। आगे थाह नहीं है। हिम्मतवाले आगे बढ़ते हैं। बहुत डूबतें हैं। कुछ तैरते भी दिखते हैं।

मनोभावों का चित्रण करने के स्थलों पर भाषा में ओजस्विता आ गयी है। ऐसे स्थलों पर भाषा में प्रवाह तथा शैली में भावात्मकता आ गयी है। निम्न उदाहरण में प्रमोद का मानस-उद्वेलन देखिए।

इसलिए आज जो असली तराजू है, उसमें हल्का तुल रहा हूँ। आज इस सारी वकालत के पेशे और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठ कर सोचता हूँ कि क्यों मुझसे तनिक मूर्ख नहीं बना गया ? इस सब का मैं क्या करूँ ? जबकि समय पर प्रेम के प्रतिदान में चूक गया। यह सब मैल है। जो मैंने बटोरा है – मैल है कि मेरी आत्मा की ज्योति ढक रहा है, मैं यह सब नहीं चाहता हूँ।

प्रतीकात्मकता और संयमता भी 'त्यागपत्र' की भाषा का एक विशिष्ट गुण है। जटिल मनोभावों एवं गहन विचारों को व्यक्त करने के लिये जैनेन्द्र जी ने कहीं–कहीं प्रतीकात्मक शैली को भी अपनाया है। जहाँ विचार अधिक उलझा हुआ जान पड़े वहाँ जैनेन्द्र जी ने उनको किसी–न–किसी प्रतीक के द्वारा स्पष्ट कर दिया है। इस कारण भाषा में कहीं–कहीं चित्रमयता भी आ गयी है। चौथे और आठवें परिच्छेद के कथानक के प्रारम्भ में इसी प्रकार की भाषा–शैली प्रयुक्त हुई है। प्रतीकात्मकता और भाषा की संतुलन शक्ति के कारण लेखक अश्लील कही जाने वाली घटनाओं एवं कामपूर्ण प्रसंगों के वर्णन में संयमित हो गया है

प्रश्न५- 'त्यागपत्र' के आधार पर प्रमोद का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर – 'त्यागपत्र' नाटक में नायक होने के साथ-साथ प्रमोद नाटक का खलनायक भी है। खलनायक के हम जिस जघन्य रूप से परिचित हैं, उसका रूप प्रमोद में नहीं मिलेगा। जैनेन्द्र ने विषमता, दुष्टता और कुटिलता को बाहर ढूंढने के स्थान पर मानव के मन के अन्दर ही ढूंढा है। इसीलिए खलनायक की अलग सृष्टि नहीं हुई है। इसलिए नायक प्रमोद ही खलनायक है। जैनेन्द्र ज़ी ने प्रमोद के चरित्र का उद्‌घाटन करते-करते उसके हृदय में बसे हुए आह्लाद

स्वार्थ, आत्मप्रेम को ही खलनायक का चेहरा ओढा दिया है।

प्रमोद अपनी बुआ मृणाल के प्रति विशुद्ध प्रेम की दुहाई अवश्य देता है, किन्तु जब उस परित्यक्ता और पतिता की सुध नहीं लेता, तो उसकी प्रेम–दुहाई पर संदेह होने लगता है और यह दिखने लगता है कि प्रमोद अपने मन के अन्दर आत्म-प्रतिष्ठा एवं आत्मोन्नति की भावना का चोर छिपाए हुए है और उस चोर के आदेश के अनुसार वह अपनी बुआ की पूर्ण उपेक्षा कर देता है। उसके मन में छिपे पाप का पता तब चलता है, जब मृणाल की मृत्यु पर उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कारती है और उसके मन के कोने में छिपा बैठा खलनायक प्रकट हो जाता है।

प्रमोद को जीवन में यद्यपि अनेक सफलतायें मिलती हैं फिर भी जज की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। परन्तु अपनी बुआ मृणाल के प्रसंग को लेकर उसका हृदय कचोट उठता है और वह आत्मपीड़न से उद्विग्न हो उठता है। प्रमोद बचपन से बुआ के पास रहा। बुआ उसे बहुत प्रेम करती थी। वह भी बुआ के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम रखता था। बुआ पर जब घर से मार पड़ती थी या जब-जब वे ससुराल से पिट कर आती है, तब-तब उसका हृदय वेदना से भर जाता है। वह बुआ को ससुराल जाने नहीं देना चाहता है, उनको अपने पास ही रखना चाहता है।

कोयले वाले बनिये के पास से भी बुआ को लेने के लिये उनकी खोज करता हुआ वह भटकता है, परन्तु आत्मोन्नति का ध्यान, समाज की मर्यादा आदि के बन्धन के कारण वह बुआ को पास रखने और सहायता करने का साहस नहीं कर पाता। वह ऐसा कहता अवश्य है परन्तु कर नहीं पाता।

हम प्रमोद को बुआ के प्रति कोई ऐसा व्यवहार करते हुए नहीं पाते जिसके आधार पर कह सकें कि उसने अपना कर्तव्य-पालन नहीं किया। परन्तु उसमें दुर्बलताएं भी तो थीं। यदि वह अपनी जिद पर अड़ जाता तो बुआ का उद्धार कर सकता था और वह उनको मृत्यु के मुख में जाने से बचा सकता था। जब बुआ से वह अन्तिम बार मिला तब वे सख्त बीमार थीं। उस समय प्रमोद पूर्णरूप से स्वतंत्र और

समर्थ था। प्रमोद अपनी वकालत में ऐसा चिपट गया कि उसके स्वार्थ ने उसे बुआ की खोज खबर लेने तक के लिये भी प्रेरित नहीं किया। सत्रह वर्ष हो गये किन्तु उसने बुआ की खोज खबर तक नहीं ली। इस प्रकार प्रमोद आत्मलोचन करता हुआ अन्त में अपने को असफल और कर्तव्य-विमुख पाता है। बुआ ने उससे धन मांगा था, परन्तु वह स्वार्थ के कारण न दे सका।

आज उसकी आत्मा संतप्त हो रही है। वह समय पर प्रेम का प्रतिदान देने में चूक गया– अतः उसकी सारी प्रतिष्ठा और वैभव साररहित है। पर क्यों ! क्यों बुआ की मांग मुझसे पूरी नहीं हुई ? उन्होंने इतना प्रेम किया, इतना विश्वास किया और जब एक सवाल मुझसे किया, तब उसके जवाब में अपना धन मुझसे क्यों नहीं वहाँ डाला गया ? क्यों मेरी मुट्ठी भिंच गयी ? यह भी हुआ तो फिर क्यों उसके बाद मेरी आत्मा ताप से संतप्त नहीं रही ? क्यों ? क्यों वकालत में आँख गड़ा कर खुद फूलने में लगा रहा ? क्यों मन में सोचता रहा कि मैं ठीक हूँ ? क्यों कर्तव्य को दबाता रहा, अकर्तव्य रहा ? .... तोल-तोल कर चला और तराजू अपने हाथ में रखी। आज जो असली तराजू है, उसमें हल्का तुल रहा हूँ। .... आज इस सारी वकालत के पैसे और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठ कर सोचता हूँ कि क्यों मुझसे तनिक मूर्ख नहीं बना गया? इस सबका मैं क्या करूँ, जबकि समय पर प्रेम के प्रतिदान में चूक गया।

यह सब मैल है, जो मैने बटोरा है। मैल है कि मेरी आत्मा की ज्योति को ढंक रहा है। वह सब नहीं चाहता हूँ। उस बात को सत्रह के कुछ ऊपर ही वर्ष हो गये हैं। आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय मेरे लिये यह है कि अमानुषिकता के साथ मैं सत्रह के सत्रह वर्ष सें बुआ को बिना देखे काट गया।

प्रमोद का यह पश्चात्ताप और आत्मग्लानि उसके स्वार्थ और अहं का दमन कर देती है, उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। बुआ की मृत्यु की सूचना से प्रमोद के मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि

वह जजी से त्यागपत्र देकर मृणाल के प्रति उपेक्षापूर्ण आचरण का प्रायश्चित करता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मृणाल के लिये प्रमोद के हृदय में अपार जगह थी।

प्रश्न६- मृणाल का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर-- 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल है। वह समाज की प्रचलित रूढ़ियों से विद्रोह और संघर्ष करती हुई सच्चाई से अपने पथ पर आगे बढती चली जाती है। इस संघर्ष में ही साहस के साथ वह अपना बलिदान कर देती है। मृणाल का सारा जीवन पीड़ा, घुटन, त्याग, प्रताड़ना और उत्सर्ग से भरा हुआ है। वह पति द्वारा परित्यक्ता है। एक के बाद दूसरे पुरुष के साथ रहती है। परन्तु समाज की दृष्टि से जिसे अनैतिक आचरण कहते हैं, उसकी दृष्टि में स्त्री के पतिव्रत—धर्म का पालन है। मृणाल समाज के उच्च वर्ग को चुनौती देती है। प्रमोद के प्रयत्न करने पर भी उसके साथ लौटना स्वीकार नहीं करती। वह किसी की सहायता नहीं चाहती। उसे सहायता केवल इसलिये चाहिए जिससे कि अपने पथ पर बढ़ने और संघर्षों का सामना करने का उसे बल मिलता रहे। मृणाल प्रमोद की बुआ है। उसे आरम्भ से ही पीड़ा, घुटन और प्रताड़ना का सामना करना पड़ा। वह शीला के भाई को प्रेम करती थी। परन्तु उसका विवाह अन्यत्र हो जाता है। ससुराल में उसके साथ बुरा बर्ताव होता है। उसकी बेंतों से पिटाई होती है। प्रमोद के पिता के पास भी उसे आश्रय नहीं मिलता। अन्त में पति द्वारा परित्यक्ता होकर वह एक कोयला बेचने वाले की रखैल बन जाती है, उससे उससे गर्भ भी रह जाता है। प्रमोद मृणाल की खोज करता हुआ उसके पास पहुँच जाता है। परन्तु वह प्रमोद के साथ जाना अस्वीकार कर देती है।

वह उस पुरुष को छोड़ना नहीं चाहती, जिसने कि उसको आश्रय दिया। जब तक वह पुरुष पास रहे, उसकी सेवा करना मृणाल अपना धर्म समझती है, वह पापिनी हो सकती है, परन्तु आश्रय देने वाले के प्रति अकृतज्ञ नहीं हो सकती। उसने स्वयं पति को नहीं छोड़ा, प

जब उसको रखना नहीं चाहते थे, तब वह उनपर भार बनकर क्यों रहे।

मृणाल अपने ऊपर आने वाले संकटों और आरोपों का संघर्ष झेलती है। वह आत्मपीड़न के द्वारा आत्मशुद्धि के मार्ग की ओर प्रवृत्त होती है। अनैतिक एवं पापमय जीवन उसके लिए आत्म-साधना का मार्ग है। वह संघर्षों का सामना करती हुई बिना किसी शिकायत के अपने पथ पर चलती चली जाती है। वह अपने विषय में कच्ची है। सत्य मार्ग पर चलते हुए उसे जो कष्ट होते हैं, उनको वह सहर्ष अंगीकार करती है। उसके चरित्र की श्रेष्ठता का संकेत देने के लिये ही उपन्यास के अन्त में प्रमोद द्वारा जजी से त्यागपत्र देने का प्रसंग रखा गया है।

मृणाल अपने अनैतिक आचरण का समर्थन करती है। कोयले वाले बनिये के कारण ही वह आत्मघात के पाप से बची। अतः वह उसको किस प्रकार छोड़ सकती है। वह प्रमोद से कहती है।

'जिनके सहारे बची, उन्हीं को छोड़ देने को मुझसे कहते हो ? मैं नहीं छोड़ सकती। पापिन हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर अकृतज्ञ भी बनूं।

इतना ही नहीं, अपितु मृणाल अपने आचरण में सती का आदर्श पालन करने की बात कहती है।

जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है; यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरुरत मैं समझ सकती हूँ, तन दे सकूंगी, शायद वह अनिवार्य हो। फिर लेना कैसा? दान स्त्री का धर्म है। नहीं तो उसका क्या धर्म है? उससे मन मांगा जाएगा, तन भी मांगा जाएगा। सती का आदर्श और क्या है, पर उसकी बिक्री ······ न, न यह न होगा।

इस प्रकार रखैल होते हुए भी मृणाल सती के आदर्श के पालन की बात कहती है–

मृणाल अपने इस कार्य को धर्म ही मानती है;वह कहती है— पति को मैने नहीं छोड़ा, उन्होंने ही मुझे छोड़ा – मैं स्त्री-धर्म

मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को य चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उसपर डा रहे? वह मुझे देखना नहीं चाहते—यह जानकर मैनें उनकी आँखों आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा मैं तेरा पति न हूँ। तब मैं किस अधिकार से अपने को उनपर डाले रहूंगी ? पतिव्रता क यह धर्म नहीं है

मृणाल लांछित जीवन व्यतीत करने में भी आदर्श-साधना देखत है। वह ऐसा ही कहती है।

सत्य को सदा नये प्रयोगों की अपेक्षा रहती है। कुछ दिन बा वह बनिया भी मृणाल को छोड़कर चला जाता है, अस्पताल में उस लड़की जन्म लेती है। इसके पश्चात् वह एक डाक्टर परिवार में ट्यूश करने लगती है। संयोगवश प्रमोद इसी परिवार में लड़की देखने आ है – मृणाल यहाँ से भी निकाल दी जाती है। इसके पश्चात् मृणाल भटकती हुई ऐसे लोगों के बीच में पहुंच जाती है, जो समाज औ नैतिकता की दृष्टि से बहुत गिरे हुए तथा मानवता की सड़ांध कहे जा हैं। यहाँ वह बीमार पड़ जाती है। प्रमोद के आग्रह करने पर भी यहां नहीं जाती उसे यहाँ भी मानवता के दर्शन होते हैं और यहीं उसकी मृत् हो जाती है।

जैनेन्द्र जी के अन्य उपन्यासों की नायिकाओं की तरह मृणाल भ समाज की अनैतिक मर्यादाओं की अवहेलना करती है। उसका स्वेच्छाचा भी आदर्श का पालन ही है। वह समाज की बंधी-बंधाई लीक का पाल करने में तनिक भी उत्सुक नहीं है। वह शरीर–दान में भी सती धर्म क पालन का ध्यान रखती है। एक के बाद अनेक पुरुषों को अपना शरी सौंपने के बाद भी वह अपने को सती ही समझती है।

प्रश्न७- 'व्यक्तिवादी' उपन्यास किसे कहते हैं? इस उपन्यास से आवश्यक उद्धरण देते हुए जैनेन्द्र के औपन्यासिक व्यक्तिवाद प संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

उत्तर– हिंदी साहित्य–कोश के अनुसार, व्यक्तिवादी उपन्यास

सामाजिकता को व्यक्ति का बंधन स्वीकार कर व्यक्ति की स्वतंत्रता को मानने वाला जीवन दर्शन है।

इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यह समाज के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण की स्थापना करता है; समाज में इसका सामयिक अस्तित्व नहीं है। प्रत्युत यह स्वतंत्र व्यक्तियों का योग है। अतः समष्टि शक्ति का व्यक्ति पर उसके अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर बलप्रयोग का नैतिक अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों और स्वार्थों को जितने की बात स्वयं जितनी अच्छी तरह समझ सकता है, उतना समाज कदापि नहीं। अतः तर्क की दृष्टि से सामाजिक बन्धन और परम्पराएं, रीति और रिवाज, सामूहिक संस्थाएं और मान्यताएं निरंकुशता के साथ व्यक्ति पर शासन नहीं कर सकतीं। व्यष्टिमूलक व्यापारों का साध्य व्यक्ति का हित और उसका एकमात्र ज्ञाता की भेदी है।

इस प्रकार के जीवन दर्शन में सामाजिक परम्परा से दूर रहकर भी व्यक्ति अपने अस्तित्व और अपनी निष्ठा का भली-भाँति निर्वाह कर लेगा तथा अपने सम्मान को सभी दृष्टिकोणों से अक्षुण्ण बनाए रखने में समर्थ हो सकेगा। चाहे वो सम्मान धार्मिक, वैज्ञानिक अथवा आर्थिक तथा राजनैतिक किसी भी तरह का हो। व्यक्तिवादी मनुष्य सामाजिक संबंधों के प्रति अनास्थावादी, संशयवादी, क्षणिकतावादी इकाई बन जाता है। हिंदी में प्रयोगवादी प्रकृति इसी व्यक्तिवादी धारा का एक रूप है– भारतीय दर्शन व्यक्ति की महत्ता समाज में प्रतिपादित कर उसे आत्मज्ञान संपन्न प्राणी मानते हैं। अज्ञेय सामाजिक दृष्टि से हिंदी उपन्यासों पर चर्चा करते हुए प्रेमचंद को प्रथम आधुनिक उपन्यासकार कहते हैं। वे आगे कहते हैं कि "मेरी समझ में प्रेमचंद का गोदान, हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'वाणभट्ट की आत्मकथा' और जैनेन्द्र कुमार का 'त्यागपत्र' हमारे काल की तीन महान रचनाएं हैं।"

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य में जैनेन्द्र कुमार शायद सबसे अधिक प्रयोगशील लेखक हैं। चाहे शैली हो अथवा वस्तु; दोनों पर जैनेन्द्र जी ने अनेक प्रयोग किये हैं–चाहे वे अपने आप

में सफल हुए हों अथवा असफल; साहित्य में अपना एक स्थान रखें जहाँ तक अज्ञेय जी का मानना है, वह यह मानते हैं कि जैनेन्द्र कु के दर्शन में भी कुंठा है तथा वह दर्शन किसी विशेष दक्ष व्यक्ति में कुंठित मनुष्य का ही दर्शन है। वह कुंठा 'पर्याप्त दोषप्रद सामाजि प्रवृत्ति' की माँग की कुंठा नहीं है। यही जैनेन्द्र का औपन्यासि व्यक्तिवाद है। नये-नये पात्रों को लेकर जैनेन्द्र ने उपन्यासों के आन्तरि द्वन्द के आधार पर चरित्रों को उपस्थित किया है। जैनेन्द्र जी वैयक्तिक समस्या और संघर्ष की प्रबलता के कारण सर्वथा पृथक हो ए नये जगत को प्रस्तुत किया है, जिसके आधार पर उपन्यासकार अ उसके संबंध में उन्हें लोग अन्तर्मुखी कहते हैं।

अन्तर्मुखी पात्रों की दो कोटियाँ हैं।

१. **वस्तुमुखी और व्यक्तिमुखी।** जहां तक 'त्यागपत्र' का सवाल इसमें दोनों पात्र व्यक्तिमुखी हैं। इस नाटक में मृणाल के चरित्र समस्या प्रधान है। वह हीन स्थिति से प्रारम्भ होकर हीनतर स्थिति में पहुँचती है; क्योंकि वह प्रारम्भ से ही स्वच्छंद रहना चाहती है। उपन्य में हम देखते हैं कि मृणाल शाम के वक्त छप्पर पर खटोला डाले ऊ उड़ती हुई चीलों को ही चुपचाप देख रही है, कभी पतंग के पेंच देख है तो कभी कटी हुई पतंग पर जब तक वह ओझल न हो जाए आँखें गड़ रहती है। मृणाल अपने-आप को वर्तमान में कटी हुई पतंग मानती है। उस चील की भांति बनना चाहती है जो उन्मुक्त हो दूर-दूर फैले आका में विचरण कर सके। यहाँ पर प्रमोद की बात ध्यान देने योग्य है; कहता है कि मैं जब आकर खटोले पर उनके बराबर बैठ जाता तब शनैः शनैः मुझे अपने ऊपर लुढ़का लेती थीं। वह प्रमोद से एक प्रकार आशा करती है परन्तु प्रमोद में वह बात न समझ कर वह शीला के भ से प्रेम संबंध स्थापित करती है और मृणाल प्रमोद से बराबर यह क करती है कि वह उसे बुआ न कहे, बल्कि जीजी कह कर पुका करे। इस प्रकार काल्पनिक वातावरण को घर में निर्मित कर चाहती है किन्तु ऐसा कुछ नहीं होता । प्रमोद नासमझ और ब

ही बना रहता है। अन्ततोगत्वा प्रमोद के माता-पिता को मृणाल के प्रेम-प्रपंच का पता चल ही जाता है और उसकी खूब पिटाई होती है। प्रमोद बाद में जाकर देखता है कि उनकी साड़ी इधर-उधर हो गयी है और बदन का कपड़ा बेहद मार से झीना हो गया है। जैनेन्द्र अपनी सारी पात्राओं को इसी प्रकार निर्वसन करा देते हैं। यही उनका औपन्यासिक व्यक्तिवाद और व्यक्तिवाद से अधिक कुंठाग्रस्त व्यक्तिवाद है। जैनेन्द्र के उपन्यासों, कहानियों की अधिकांश पात्राओं का ऐसा व्यवहार उनके गुण जीवन-दर्शन का प्रतीक है।

प्रश्न८- जैनेन्द्र जी के त्यागपत्र के आधार पर पाप-पुण्य की नैतिक मान्यताओं का मूल्यांकन कीजिए तथा यह भी स्पष्ट करें कि इसकी रचना आत्मज्ञान और चरित्र की आन्तरिक शुद्धता की कसौटी पर किया गया है ?

उत्तर– त्यागपत्र के कथोपकथन मनोविष्लेषण से पूर्ण हैं। वे पात्रों की विशिष्ट मनोदशा का परिचय भली-भांति दे देते हैं। त्यागपत्र के सम्वादों में नाटकीयता; तीखापन और मार्मिकता बहुत अधिक है। उनमे पात्रों का मनोविश्लेषण ही प्रकट हुआ है। जैनेन्द्र जी उपन्यास में उपयोगितावाद को प्रोत्साहन देते हैं। उपन्यास का काम है कुछ आने की भविष्य की सम्भावनाओं की जरा सी झांकी दिखाना और जो कुछ अन्यत्र है; उसे पूरी तरह हमारे सामने खोलकर रख देना। जैनेन्द्र जी मानते हैं कि वर्तमान की पेचिदगियों को समझाते हुए उसके भावी विकास का मार्ग प्रशस्त करना उपन्यास का काम है। इसी मान्यता पर उनका त्यागपत्र उपन्यास आधारित है। त्यागपत्र के नामकरण से ही उसके उददेश्य का संकेत मिल जाता है। कथानक के अन्त में प्रमोद जजी की नौकरी से त्यागपत्र दे देता है। प्रमोद समर्थ होते हुए भी बुआ की सहायता करने की ओर अग्रसर नहीं हुआ। इस कारण पश्चात्ताप की ऐसी मानसिक वेदना उसे भुगतनी पड़ी कि उससे बचने का एकमात्र उपाय उसे भौतिक वैभव से विमुख होना ही उचित लगा तथा जजी से उसने त्यागपत्र दे दिया।

कथानक के अन्त में जैनेन्द्र जी ने जिस जीवनादर्श की प्रति
स्थापित की है वह अलौकिक है कथानक की नायिका मृणाल अपने ऊ
आने वाले संकटों और आरोपों को सहर्ष झेलती है और आत्मपीड़न द्वा
आत्मशुद्धि की ओर अग्रसर होती जाती है। पतित एंव पापमय जी
उसके लिए आत्म-साधना का मार्ग है। वह बिना किसी शिकायत के इ
पथ पर आगे बढती चली जाती है। वह अपनी शुद्धता और सच्चाई
विषय में आश्वस्त है। वह सत्य के पथ पर चलती हुई मृत्यु का आलिंग
करती है। उसके जीवन में आत्मपीड़न की स्वीकृति और सच्चाई
उत्पन्न तेजस्विता प्रमोद के हृदय को झकझोर डालती है। उसे अप
स्वार्थपूर्ण आचरण पर इतनी ग्लानि होती है कि वह अपनी जजी
त्यागपत्र दे देता है।

'त्यागपत्र' का उद्देश्य वर्तमान सामाजिक मर्यादा और नैति
व्यवस्था के प्रश्न को सामने लाकर उसे सुलझाना है। प्रारम्भ में य
प्रश्न उठाया गया है कि प्रमोद की बुआ पतिता थी। यह कोयला बेच
वाली बनिये की रखैल बनकर रहती है। इसके बाद भटकती हुई अन्त
वेश्याओं, चोरी, उठाईगीरों एवं अनैतिक और कानूनी दृष्टि से अपरा
व्यक्तियों के बीच में पहुंच जाती है। वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है
ज्यों-ज्यों प्रमोद अपनी बुआ मृणाल के विषय में सोचता है त्यों-त्यों उ
अनुभव होने लगता है कि वह पतिता होने पर भी महान् थी। क्योंकि अ
तक उसने सच्चाई को नहीं छोड़ा। पाप-पुण्य की नैतिक मान्यताओं
यही मूल्यांकन 'त्यागपत्र' उपन्यास का उद्देश्य है।

**प्रश्न ६- चरित्र-चित्रण की दृष्टि से जैनेन्द्र जी की नाट्यक
की समीक्षा कीजिए तथा यह भी सिद्ध कीजिए कि यह उपन्या
चरित्र-प्रधान है।**

उत्तर– 'त्यागपत्र' एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। 'त्यागपत्र'
कथानक का गठन पाप-पुण्य की गहन समीक्षा के आधार पर हुआ है
कथानक के प्रारम्भ से ही यह प्रश्न उठा दिया गया है कि समाज
मान्यताओं के आधार पर मृणाल को पापिनी कहा जाएगा या नहीं।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास चरित्र-चित्रण प्रधान हैं। उनका ध्यान कहानी कहने के स्थान पर पात्रों के चरित्र-चित्रण और उनकी मानसिक गहराई में ही अधिक बैठने का रहता है। जैनेन्द्र जी ने अपने पात्रों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व-चिन्तन और जीवन के आदर्शों को कत्ल किया है। उनके पात्र आदर्श और दार्शनिक हैं। जैनेन्द्र जी पात्रों की प्रमुख प्रवृत्तियों का संकेत करते हैं। जैनेन्द्र की अभिव्यक्ति की एक विशेषता यह भी है कि इनके उपन्यासों में नारी पात्रों में स्वेच्छाचारिता है। व्यक्तित्वहीन पात्र ही प्रायः जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मिलते हैं। जैनेन्द्र जी के उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि उनके उपन्यासों में पात्रों की संख्या बहुत ही कम है। आपने अपने उपन्यास में मात्र ३ या ४ पात्रों से ही काम चला लिया है।

पात्रों का चयन – जैनेन्द्र जी अपने उपन्यासों में पात्रों के मानसिक संघर्ष को प्रस्तुत करना चाहते हैं और संघर्ष मध्यम वर्ग में ही प्रायः अधिक मिलते हैं। इसीलिए आपने अपने उपन्यासों में पात्रों का चयन समाज के मध्यमवर्गीय पात्रों से किया है। मध्यमवर्गीय लोगों के जीवन की लालसा, आशा, निराशा, आकांक्षा और सुख-दुःख तथा रहन-सहन का विश्लेषण आपके उपन्यासों में मिलता है। जैसे 'परख', 'सुनीता' व 'त्यागपत्र' में पात्र प्रायः इसी प्रकार के हैं। परख की कट्टी, सत्यवान और बिहारी के 'सुनीता', श्रीकांत और हरिकृष्ण और 'सुखदा' के कांतलाल सुखदा, जयन्त, और भुवन मोहिनी, 'त्यागपत्र' के मृणाल और प्रमोद आदि पात्र समाज के मध्यम वर्ग के ही हैं।

पात्रों की न्यूनता – जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में प्रायः पात्रों की संख्या कम ही मिलती है। इनके उपन्यासों में पात्रों का जमघट न होकर ३-४ पात्र से ही काम चला लेते हैं। इनमें २-१ प्रमुख तथा २-१ गौण पात्र ही होते हैं। आपके उपन्यासों में पात्रों की स्वल्पता का मुख्य कारण यह भी है कि आप परम्परागत कहानी का निर्वाह नहीं करते। वे समाज में उठने वाले संघर्ष और जटिलताओं को ही कथा का आधार बनाते हैं। वे परम्परागत व्यक्तित्व के समस्त जीवन का एक

खण्ड-मात्र चयन करते हैं। त्यागपत्र में मात्र प्रमोद और मृणाल ही पात्र हैं। इसी प्रकार 'परख' में कट्टो, सत्यवान और बिहारी—इन्हीं तीन पात्रों को लेकर सारा कथानक गठित हुआ है। इसी प्रकार 'सुखदा' में कांतलाल, सुखदा, जयंत, चंडी और ललिता ही मुख्य पात्र हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जैनेन्द्र जी अपने उपन्यासों में पात्रों की संख्या में अत्यन्त न्यूनता रखते हैं।

चरित्र-चित्रण की समानता— जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में प्रायः पात्रों का सृजन रहस्यात्मक आदर्शवादिता के आधार पर किया है। आपके उपन्यासों में प्रायः पात्रों के चरित्र में समानता देखने को मिलती है। पात्रों के चरित्र विकास में इतनी समानता है कि यदि एक उपन्यास के पात्रों का नाम बदल कर दूसरे उपन्यास में रख दिया जाए तो उनको पहचाना नहीं जा सकता। कट्टो, सुनीता, अनीता, सुखदा पूजा और कल्याणी के चरित्रों की विशेषताएं परम्परा से बहुत अधिक मिलती हैं। आपने अपने उपन्यासों में पात्रों का सृजन रहस्यात्मक आदर्शवादिता के आधार पर किया है। दार्शनिक तत्त्व आदर्शवादिता के कारण उनके पात्रों में गूढ़ता आ जाती है। इसी रहस्यात्मक आदर्शवादिता के आधार पर 'त्यागपत्र' की मृणाल कोयले वाले के साथ अनैतिक संबंध रखती है। अपने अनैतिक आचरण का समर्थन करते हुए वह कहती है—जिनके सहारे बची उन्हीं को छोड़ देने को मुझसे कहते हो—मैं नहीं छोड़ सकती। पापिनी हो सकती हूँ।

नारी पात्रों में स्वतंत्र प्रेम और स्वेच्छाचारिता – जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की नारी सामाजिकता और नैतिकता के बन्धन तोड़ डालती है। जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारी अबला नहीं है। नारी पात्रों में स्वेच्छाचारिता और स्वतंत्र व्यक्तित्व की भावना अधिक है। कल्याणी, अनीता, मृणाल, सुखदा, भुवन, विप्सा मोहिनी, चण्डी, लिंगा और इला आदि नारी पात्रों की स्वतंत्र स्वेच्छाचारिता और स्वतंत्र व्यक्तित्व उनके प्रत्येक कृत्यों में झलकती है। जैनेन्द्र के स्त्री पात्र जहाँ सशक्त, स्वच्छंद, व्यक्तिपरक, नैतिक-अनैतिक के विचार से ऊपर हैं, वहीं पुरुष

पात्र पुरुषत्व और स्वाभाविक तेज से युक्त रहते हैं। पत्नियों की अपेक्षा पति अधिक निरीह हैं। उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। वे पत्नी की इच्छा को ही सबकुछ मानते हैं। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि आपके उपन्यासों के पात्र जीवन दर्शन से पूर्णरूपेण प्रभावित हैं।

प्रश्न १०- जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी के स्वरूप, उनकी स्थिति और उनके उन्मुक्त प्रेम पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर – जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रायः नारी के स्वतंत्र प्रेम को मान्यता दी गई है। आपके उपन्यासों की नारियाँ अपनी स्वेच्छाचारिता को आदर्श और सतीत्व कहती हैं। जैनेन्द्र जी वर्णव्यवस्था और जाति-पाँति के विरोधी हैं। तथा धर्म के बाहरी आडम्बरों के भी विरुद्ध हैं। आपने एक ओर सत्यता को धर्म का आधार माना है तथा दूसरी ओर मानव प्रेम और सेवा भाव को भी इसका आवश्यक अंग माना है। आपकी एक विशेषता यह भी है कि आपने अपने उपन्यासों में सतीत्व और स्त्री का समन्वय स्थापित किया है।

धर्म-भावना – जैनेन्द्र की धार्मिक भावना उनके 'कल्याणी' नामक उपन्यास में देखने को मिलतीं है। कल्याणी में वकील साहब की पत्नी कहती है कि जबसे मन्दिर बना है उनकी आमदनी तब से बराबर बढ़ती जा रही है। सवेरे चार बजे उठ जाती हूँ और पूजा का वक्त निकाल कर बाकी दिन काम में लगी रहती हूँ। घर-घर में वही हैं। तब यदि हम किसी को भूखा लौटा कर अन्न डालें तो मेरा जगन्नाथ मुझे क्या कहेगा। क्या वह नारायण तब कहेगा कि क्या ऐसे ही तेरे यहाँ मेरी पूजा होती है? नर के अनादर में कहीं नारायण की पूजा होती है।

जैनेन्द्र जी ने हृदय की पवित्रता को धार्मिकता की कसौटी माना है। आपने सदा ही धर्म के बाहरी आडम्बरों का विरोध किया है। आपने पवित्रता और सहृदयता को सर्वोपरि माना है। अनैतिक आचरण करने वाली मृणाल अपने-आप में आश्वस्त है। मृणाल शरीरदान में भी सती के धर्मपालन का ध्यान रखती है। एक के बाद अनेक को अपना

शरीर सौंपने के बाद भी वह अपने-आप को सती समझती है।

अनाचार और सतीत्व का यह अद्भुत संयोग 'कल्याणी' की नायिका कल्याणी भी सम्मुख कर दिखाती है। वह अपने पति के घर से ३–४ दिन तक गायब रहने के उपरांत लौट आती है और पति को परमेश्वर समझती हुई उसकी मार को सहर्ष सह लेती है। इस स्वेच्छाचारिता के बावजूद भी कल्याणी अपने को सती ही समझती है।

वर्ण-व्यवस्था की शिथिलता – आपके उपन्यासों में प्रायः वर्ण-व्यवस्था लुप्त लगती है। क्योंकि 'कल्याणी' उपन्यास में पूजा में कल्याणी मेहतरानी को भी आग्रह के साथ सम्मिलित करती है। प्रातःकाल व सायंकाल की दोनों आरतियों में वह पति, बच्चों, घर के नौकर-चाकर, मेहतरानी सभी से आरती में शामिल होने का आग्रह करती है तथा स्वयं आरती करती है। नीचे कमरे में रहने वाली मुसलमान महिला तो प्रत्येक आरती में सम्मिलित रहती है।

त्यागपत्र में मृणाल अपने आचरण को सर्वथा नैतिक बतलाती हुई कहती है— पति को मैंने नहीं छोड़ा। उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। क्या पतिव्रता स्त्री को यह चाहिए कि वह पति के न चाहने पर भी अपना भार उसके ऊपर डाले रहे।

आपने अपनी रचनाओं में प्रायः नारी की स्थिति को पारिभाषित करते हुए नारी के स्वाभाविक धर्म तथा नैतिकता द्वारा आरोपित धर्मों की ओर विशेष ध्यान दिया है। नारी और पति के बीच दो परस्पर विरोधी कर्तव्यों के बीच समझौता करने के लिये जैनेन्द्र कुमार के सभी नारी पात्र उत्सुक हैं। इस समझौता को नारी का सहज धर्म बतलाते हुए 'विवर्त' की दिल्ली कहती है 'बहन पुरुष की और बात है। वे तो प्रेम के लिए हैं। पर हम स्त्रियाँ यदि प्रेम स्वीकार नहीं करेंगी तो कहाँ जाएँगी। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जैनेन्द्र जी ने नारी और पत्नी के परस्पर विरोधी आचरण में इसी आधार पर सामंजस्य स्थापित किया है।

उन्मुक्त प्रेम – जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रायः नारी पात्रों में जैसे सुखदा, भुवन मोहिनी और अनीता गृहस्थ की मर्यादा को तोड़ती हुई

उन्मुक्त प्रेम, मुक्त भोग और प्रेम के स्वातंत्र्य की बात को बार-बार दोहराती हैं। ये तारिकाएं विवाह के बंधन और मर्यादाओं को तोड़ती हुई परपुरुष के प्रेम को प्राप्त करने के लिए पागल हैं।

विवाह और सामाजिक विकृतियां – जैनेन्द्र जी की रचनाओं से हमें यह जान पड़ता है कि उन्होंने विवाह को समाज में संकुचितता और स्वार्थपरता का कारण-मात्र माना है। यही वजह है कि आपने नारी के स्वेच्छाचार का समर्थन किया है और उनके आदर्शों को पतिव्रत का रूप कहा है।

प्रश्न ११. प्रकृतिवादी उपन्यास किसे कहते हैं। क्या त्यागपत्र एक प्रकृतिवादी उपन्यास है?

उत्तर – जहाँ तक प्रकृतिवाद का सवाल है त्यागपत्र में मृणाल के व्यवहार में ही प्रकृतिवाद मिलता है। बल्कि हम यहाँ तक कह सकते हैं कि त्यागपत्र प्रकृतिवादी न होकर प्रकृतिवाद के समीप है। कतिपय संभ्रांत आलोचकों के अनुसार प्रकृतिवाद और यथार्थवाद शब्द एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। दोनों शब्दों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् रूबी ने पूर्व प्रकृति की ओर लौटने के सिद्धांत को प्रकृतिवाद का धर्म कहा है। प्रकृतिवाद दर्शनशास्त्र के एक ऐसे सिद्धांत के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जिसके अनुसार प्रकृति को प्रमाण मान लिया जाता है।

जहाँ तक त्यागपत्र नाटक का सवाल है, कुछ आलोचक जैनेन्द्र को स्वयं प्रमोद ही कहते हैं। वे कहते हैं कि त्यागपत्र में प्रमोद स्वयं जैनेन्द्र ही लगते हैं। इस उपन्यास में प्रमोद और मृणाल दोनों ही कुंठाग्रस्त हैं। क्योंकि प्रमोद में मृणाल के प्रति अपनी बुआ में बुआ के संबंध और उसके चाह से अधिक चाह देखने को मिलती है और मृणाल प्रमोद को अपने भतीजे से अधिक चाहती है। तभी तो मृणाल प्रमोद को अपने ऊपर लेटने के लिए कहती है और कभी उसे अपनी छाती से घंटों चिपकाए रखती है।

प्रमोद उसके सामने अभी नासमझ है वह बुआ की हरकतों का

गहन अर्थ नहीं समझता। यद्यपि दोनों समान उम्र के हैं, पर प्रमोद की नासमझी मृणाल में एक ऐसी बेचैनी पैदा कर देती है कि वह शीला के भाई में अपने समझदार और बालिग प्रमोद को ढूँढ़ती है। शीला के भाई से जब उसके संबंध का पता चलता है। तब उसे घर से भाई भावज से काफी डाँट पड़ती है और फिर उसके बाद मृणाल का सारा जीवन अतृप्त इच्छाओं और कुंठाओं से भर जाता है। जब कोयला वाला व्यक्ति उसके जीवन में आता है तब वह उसके विषय में कहती है – मेरे रूप का लोभ इसपर चढता गया। वह निराश हो आया। मुझे उस समय उस पर बड़ी करुणा आयी। लेखक मानवता की कुंठाओं में स्वयं अपने को तृप्त करता प्रतीत होता है। पति के द्वारा त्यक्त होने के पश्चात् मृणाल का सारा कार्यव्यापार मूल पाठक को स्वाभाविक नहीं लगता।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो मृणाल सरीखे पात्रों का उल्लेख करने के पीछे सच्चाई की उतनी दृढ़ता नहीं जितनी कि अच्छे बुरे सभी कर्मों को अपनाने के आग्रह के प्रति अक्सर तटस्थता को हम सच्चाई, ईमानदारी का प्रतिरूप मान लेते हैं। वास्तव में यह हृदय के भाव हैं। इस तटस्थ और उदासीन दृष्टिकोण के फलस्वरुप ही वह पति द्वारा निष्कासित की जाती है। मृणाल का संपूर्ण चरित्र देखा जाए तो हम यह कह सकते हैं कि वह न तो मानवीय मूल्यों की ही सुरक्षा कर सकी और न ही व्यक्ति की साख ही प्रतिष्ठित कर सकी और न ही वह समाज को परिष्कृत ही कर सकी।

जहाँ तक त्यागपत्र उपन्यास की बात है; हम देख सकते हैं कि मनोविज्ञान इसकी वस्तु ही नहीं; इसके शिल्प में भी देखने को मिलती है। त्यागपत्र उपन्यास में मृणाल से अधिक प्रमोद का चरित्र उसके व्यक्तित्व को उभारता है।

प्रश्न १२– जैनेन्द्र उपन्यासकार कम दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक अधिक हैं – इस कथन की विवेचना करते हुए त्यागपत्र में उनकी औपन्यासिक दुर्बलताओं पर प्रकाश डालिए ?

उत्तर – जैनेन्द्र के उपन्यासों में सर्वत्र चिन्तन तत्त्व की प्रधानता

रहती है। इनके उपन्यासों में कथा तत्त्व का अभाव प्रायः देखने को मिलता है। अपने उपन्यासों के बारे में उन्होंने स्वयं कहा है कि उपन्यास लेखन में मेरी जो वृत्ति है वह वैज्ञानिक शायद न हो। पर मुझे तो वही उपलब्ध है, उसे कैरेक्टराइजेशन कहा जाता है। मेरी लेखनी में उसका लगभग बिलकुल स्थान नहीं है। मुझे उस शब्द के भाव का पता नही। इसीलिए पात्र को सांगोपांग करने की ओर मेरा ध्यान नहीं जाता। क्या एक पात्र भी अपने आप में कोई भी चीज है। असली चीज मेरी निगाह में पात्रों का पारस्परिक सम्बन्ध है न कि पात्र। स्वयं उन्होने यह भी कहा कि असल में मैं एक पक्का उपन्यासकार नहीं हूं। अमुक के सम्बन्ध में किसी एक के दूसरे से सम्बन्ध क्या है इसे दिखाते-दिखाते प्रस्तुत करते-करते मैं भी आत्म के गहरे तल को यदि छू जाता हूं तो यही मेरे लिए कम नहीं है। जैनेन्द्र जी का यह कथन उनके 'त्यागपत्र' उपन्यास पर भी लागू होता है। आपने इस उपन्यास में पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों पर ज्यादा ध्यान दिया है, वनिस्पत प्रमोद और मृणाल के चरित्र-चित्रण के जैनेन्द्र के विषय में डाक्टर प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि "जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक आधार जब तब 'स्यात्वाद' पद्धति से ओत-प्रोत होने के कारण अत्याधुनिक गेस्टाल्स पंथी मनोवैज्ञानिकों के समाज से संश्लेषमय हो जाता है।

मृणाल का संपूर्ण चरित्र देखा जाय तो हम यह कह सकते हैं कि वह न तो समाज का परिष्कार ही कर सकी और न तो मानवीय मूल्यों की रक्षा ही कर सकी। यदि देखा जाय तो त्यागपत्र की यह असफलता मुख्य नायिका मृणाल के जीवन-दर्शन की नहीं, अपितु जैनेन्द्र की विकृति एवं अस्पष्ट जीवन-दर्शन की है। इस नाटक के कथा-निर्माण में संकेत शैली का उपयोग सर्वत्र देखने को मिलता है। ये सभी विषय वस्तु-दर्शन और मनोविज्ञान से विशेष संबंधित जान पड़ते हैं।

प्रश्नानुक्रमणिका

क्रमांक पृष्ठांक

प्रश्न १– 'औरंगजेब की आखिरी रात' नामक नाटक का सारांश लिखिए।

प्रश्न २– 'औरंगजेब की आखिरी रात' नामक नाटक की समीक्षा अपने शब्दों में लिखिए।

प्रश्न ३– 'ऊसर' नामक नाटक का सारांश संक्षेप में लिखें।

प्रश्न ४– 'ऊसर' नामक नाटक की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न ५– 'परदे के पीछे' नामक नाटक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

प्रश्न ६– 'परदे के पीछे' नामक नाटक की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न ७– 'विषकन्या' नामक नाटक का सारांश लिखिए।

प्रश्न ८– 'विषकन्या' नामक नाटक की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न ९– (अ) जगदीश नारायण माथुर की 'बन्दी' का सारांश अपनी भाषा में लिखिए।

(ब) जगदीश नारायण माथुर की 'बन्दी' नाटक की समीक्षा कीजिएं।

प्रश्न १०– 'और वह जा न सकी' नामक पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

प्रश्न ११– 'और वह जा न सकी' नाटक की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न १२– एकांकी की परिभाषा बतलाते हुए इसके स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न १३– हिंदी नाटक के उद्भव एवं विकास में भारतेंदु युग का योगदान स्पष्ट करें।

प्रश्न १४– आधुनिक काल में प्रसादयुग पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए। ३०

प्रश्न १५– नाटक के उद्‌भव और विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। ३२

प्रश्न १६– आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में उपन्यास और कहानी के उद्‌गम और विकास पर प्रकाश डालिए। ३३

प्रश्न १७– उपन्यास और नाटक में क्या अन्तर है इसे स्पष्ट करें। ३५

'औरंगजेब की आखिरी रात'

प्रश्न १- 'औरंगजेब की आखिरी रात' नामक नाटक का सार लिखिए।

उत्तर – 'औरंगजेब की आखिरी रात' नामक नाटक में मरणास औरंगजेब का एकालाप है। अहमदनगर के किले में बीमार बादशाह शरीर टूट चुका है, उन्हें ज्वर व खांसी है, उनकी उम्र ८६ वर्ष है। साधारण सी पलंग पर लेटे हुए सिरहाने पर सफेद रेशम का तकि रखे हुए अपने दोनो बाजुओं में जरी की हल्की पट्टियाँ बांधे हुए जी की आखिरी घड़ियां गिन रहा है। उसकी मुख-मुद्रा अत्यंत मलिन पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उसके पास उनकी पुत्री जीनतउन्निसा बे जिसकी उम्र लगभग ४० वर्ष है, गम्भीर मुद्रा में बैठी हुई है। जी देखने में सौम्य और आकर्षक है। उसने नीले रंग की रेशमी सल और प्याजी रंग की ओढ़नी ओढ़ रखी है। जीनत के चेहरे पर भय आशंका की रेखाएं हैं। बादशाह को लगातार खांसी आ रही है। बाद अपनी पुत्री से कहता है कि जीनत ! कोई दवा उसे नहीं रोक सक ......यह मौत की आवाज है। फिर कहा, यह खांसी कोई मर्ज नहीं है बे यह खांसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज है। जो हमारे दम के स ही उखड़ना चाहती है। जीनत बादशाह को ढाढ़स बंधाती है, कहती जहांपनाह ! आपकी खांसी बहुत जल्दी ठीक हो जाएगी तथा उ कारनामों की प्रशंसा करती है। फिर भी वह कहता है कि आलमगीर वह आलमगीर नहीं है। नहीं जहांपनाह, राजपूत, जाट, मराठे सिक्ख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते। अभी आप बहुत दिनों सलामत रहेंगे। आलमपनाह ! इस बात को सुनकर आलम वि होकर जीनत से पुनः यही कहलवाना चाहता है। पुनः जीनत कहती जहांपनाह ! आप आराम करें नहीं तो आपकी तबीयत और भी खरा जाएगी। आलमपनाह हजाकिरेन उठाए। मगर औरंगजेब मौत के द पर दस्तक दे रहा है। हकीम आते हैं, जीनत घबराती है कुछ जाने पर वह तसवीह मांगता है। वह हकीम से ऐसी दवा मांग

उससे बेहोशी बनी रहे, क्योंकि होश आने पर उसके मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार आने लगते हैं और वह भीतर ही भीतर टूटने लगता है। हकीम की दवा लेकर भी वह उसे पीता नहीं है। आलम का किसी पर विश्वास नहीं है। वह जीनत की भी बात को टाल देता है और कहता है जिस तरह सुबह होने से पहले रात और भी सुनसान और खामोश हो जाती है उसी तरह मौत से पहले हमारी शिकायतों का शोर खामोश हो गया है। अब आखिरी वक्त करीब है.........आज इस आखिरी वक्त में हमारे बिस्तर के नजदीक मेरा एक भी बेटा नहीं है।

ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में खलल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सजा देकर हमेशा कैदखाने में रखा, अपने नजदीक आने भी नहीं दिया। हमारे कैदी बच्चों, तुम बदकिस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है। तुमने कोई गुनाह नहीं किया है। तुम लोगों का सिर्फ यही गुनाह है कि तुम औरंगजेब के लड़के हो। आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाजे पर पहुंच कर तुम्हारी याद कर रहा है। बादशाह की बेचैनी बढ़ती जा रही है। वह जीवन की एक एक घटना को याद कर चिन्तित हो रहा है। जिस तरह बुझने के पहले दीपक की लौ भभक उठती है उसी तरह से आलम की याददाश्त भी ताजी होती जा रही है। एक-एक करके तस्वीर उनकी आँखों के सामने आ रही है। वह आवेश में कांप उठता है, दवा को बाहर फिंकवा देता है। जीनत रोने लगती है, आलम उसे ढाढ़स बंधवाता है और कातिब को बुलवाता है और उससे खत लिखने को कहता है—हम अकेले जा रहे हैं, तुम बेसहारे हो; इसका हमें मलाल है......। लेकिन इससे क्या, मैं अपने गुनाहों का कारवां लिए जा रहा हूं। जीनत करुण स्वर में कहती है कि अब्बाजान आप ऐसा खत क्यों लिखवा रहे हैं। बेटी इस जिन्दगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा ......। इस खाक के पुतले को कफन करो ।साबुत थी, जेवाइश की जरूरत नहीं । उसी समय बाहर अल्लाहो अकबर की ध्वनि में अजान होती है।

आलमगीर ध्यान से सुनते हैं। उनके होंठों में कुछ स्पंदन है फिर एक झटके के साथ सर उठाकर अजान आने की दिशा में की ओर देखते हैं। तब बाँह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देखने पर होठों में कुछ स्पंदन होता है अल्ला ...... हो .... अक .... । तत्प उसका मस्तक एक ओर ढुलक जाता है। जीनत आँसू पोंछते हुए से उसके मुंह को सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढांप देती है। अ घुटने टेक कर दोनों हथेलियां जोड़कर मन ही मन कुछ पढ़ने ल है।

समीक्षात्मक भाग

प्रश्न २ - 'औरंगजेब की आखिरी रात' नामक नाटक की स अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर – औरंगजेब की आखिरी रात डा० रामकुमार वर्मा लिखित एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इस एकांकी में अहमदनगर के मुगल सम्राट औरंगजेब के जीवन के अंतिम समय दर्दनाक दृश्य दर्शाया है। ८६ वर्ष का आलमगीर अहमदनगर के में ज्वर व खांसी से पीड़ित है। उसके पास उनकी पुत्री जीनतउन बेगम, जिसकी उम्र लगभग ४० वर्ष की है, गम्भीर मुद्रा में बैठी हुई आलमगीर कहता है जिस तरह सुबह होने से पहले रात और सुनसान और खामोश हो जाती है उसी तरह मौत से पहले ह शिकायतों का शोर खामोश हो गया है। अब आखिरी वक्त करीब हकीम की दवा नहीं पीता, कातिब से अपना अंतिम संदेश पुत्रों लिखवाता है और तसवीह फेरते हुए अल्ला ...... हो ...... अक ...... ध्वनि के साथ प्राण छोड़ता है।

शिल्प और कला की दृष्टि से हम इस एकांकी को बहुत स नहीं कह सकते। इस एकांकी में संवाद का प्रायः अभाव सा है विचारों में उतार भी नहीं है। इस एकांकी में दृश्य और द्रष्टाका सम्बंध नहीं है। इस एकांकी में नाटकीय पात्रों का आपस में संवाद भी

मनमोहन

सिनेमा की टेकनीक में यदि स्मृति-प्रतीकों, स्वप्न-बिंबों, फैंटसीज के माध्यम से नाटक को देखा जाए तो शायद संप्रेषण हो भी जाए। औरंगजेब जैसे धार्मिक, सदाचारी, ईश्वरभक्त, प्रकांड विवादास्पद व्यक्ति को अपराध-स्वीकृति की स्थिति में डाल कर नाटकीय विश्वसनीयता नहीं प्राप्त की जा सकती। दरअसल औरंगजेब की आखिरी रात नाटक का विषयवस्तु कविता ही है।

अनेक तकनीकी गलतियों के बावजूद इस नाटक की कथा हृदय को रोमांचित कर देती है। नाटकीय परिवेश में उसका भी कोई असर नहीं होता। बाकी कहीं-कहीं औरंगजेब की उक्तियाँ पाठक व दर्शक को कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि 'औरंगजेब की आखिरी रात' एक कवि की रचना है जो एकालाप बनकर रह गयी है। नाटक की कोई त्वरा, कोई विशेषता, कोई शक्ति, कोई अर्थवत्ता इस नाटक में नहीं है। इसकी भाषा तत्कालीन वातावरण के अनुकूल है तथा बादशाही शान ओ शौकत मुगल साम्राज्य की हस्ती के अनुसार है। इस नाटक में जगह-जगह पर अरबी फारसी के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं तथा इनका प्रयोग बादशाही परंपरा के अनुकूल है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि नाटक की पठनीयता में एक आकर्षण अवश्य है।

'ऊसर'

प्रश्न ३- 'ऊसर' नामक नाटक का सारांश संक्षेप में लिखें।

उत्तर – भुवनेश्वर प्रसाद ने अपनी रचना में लिखा है जिस भाँति जीवन असार और निष्फल है उसी प्रकार कला भी जीवन की एक सजीली मुस्कान है तथा कला एक शुष्क और कठोर हास्य। भुवनेश्वर सही अर्थों में एकांकीकार थे। उनके नाटकों में मध्यवर्गीय जीवन के सारे तनाव यथार्थ की तीक्ष्णता के साथ अंकित हुए हैं। भुवनेश्वर ने जिस गौरवमयी और गहरी बेसरोकारी से अपनी बातें कहनी शुरू की थीं, वह उस जमाने के आदमी के लिए आज के जमाने की बात थी और जब भुवनेश्वर आज के जमाने तक पहुंचने के पहले ही मुफलिसी में

मर गए तो यह कल के जमाने की बात हो गयी। हिंदी एकांकी के जन्मदाताओं में से भुवनेश्वर को भूला नहीं जा सकता। उन्होंने वातावरण रचना वस्तु प्रस्ताव और नाट्य स्थिति के मध्य अभिनय के अर्थ को गहराई से लिखा है। उनके नाटकों में नाट्य-निर्देशन का सार्थक अनुशासन है। इस संदर्भ में आकस्मिक नहीं है कि 'यामा' एक वैवाहिक विडंबना 'पतिता' एक साम्यहीन साम्यवादी प्रतिभा का विकल्प रहस्य और रोमांच लाटरी मृत्यु, सवा आठ बजे 'आदमखोर' इन्सपेक्टर जनरल रोशनी और आग जैसे नाटकों को पढकर लोग चौंक गये थे। आपकी रचनाओं से पाठकगण इसलिए चौंक से गये थे, क्योंकि आप इन्कार किए जाने की पीड़ा को दूसरों की मूर्खता के समानान्तर किसी तरह के बचाव की कोशिश नहीं करते थे।

अतः हम यह कह सकते हैं कि भुवनेश्वर उपेक्षा की कुभावना करने के बजाय उपेक्षा करने वालों के लिये रास्ता छोड़ देते हैं। यही वजह है कि भुवनेश्वर हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रायः गुम-से हो गये हैं।

भुवनेश्वर के 'उसर' नाटक में मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को और हास्यास्पद के स्तर के बिखराव को बड़ी बारीकी से दिखाया है। उसर में लड़का, गृहस्वामी, ट्यूटर, युवक, मोटी रमणी, गृहस्वामिनी और लड़कियां आदि हैं। लड़का मंच पर आकर कुत्ते को पुचकारता है। इसी बीच गृहस्वामी का प्रवेश होता है और वह लड़के को डांटता है कि घर में मेहमान आए हैं और तुम कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो। वहां उपस्थित युवक ट्यूटर गृहस्वामी से मिसेज सिवेल का हाल-चाल पूछता है, गृहस्वामी कहता है क्या अच्छी है ? जरा सी मोटी, पर आप देखिए हफ्ते भर स्टैंड हार्ट से पड़ी रहेगी। ट्यूटर कुछ कहना चाहता है परन्तु गृहस्वामी अपनी ही बातों का सिलसिला जारी रखता है। इतने में मेहमान आते हैं और हंसी आरम्भ हो जाती है।

मोटी रमणी सबकुछ ठीक करने के लिए विक्टोरिया-सी मलिका चाहती है। गृह स्वामी अपनी बातें करते हैं। गृहस्वामी को देवी की रट लगी हुई है। युवक लड़कियों की ओर देखकर मुस्कुराता है। गृह स्वामी

लड़कियों से गाने का आग्रह करता है, गृहस्वामिनी भीतर जाकर नाश्ता बनाने का प्रबंध करना चाहती है परन्तु गृहस्वामी और मोटी रमणी उनको रोकती है। गृहस्वामी युवक को ट्यूटर से बातें करने की हिदायत देता है और कहता है–

'आज सब जवान आदमियों का यह हाल है। वे किताबों के अंदर भरे असर से बगावत तो करना चाहते हैं पर कर नहीं सकते और मैं आपसे पूछता हूं कि यह बगावत किसके खिलाफ है क्या आप नेचर से बैर कर सकते हैं, नहीं कर सकते हैं। आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई भी ताकत आपका सर फटने से नहीं रोक सकती।

मोटी रमणी और छोटी लड़की मिलकर एक खेल बनाती है? सब लोग १-१ कागज और पेंसिल ले लें और कुछ नहीं। एक आदमी बिना सोचे कई चीजों के नाम ले जैसे कमरे और हम लोग उस मंत्र को सुनकर एकदम जो उनके मन में आए अपने कागज पर लिख लें।

इसी बीच सब कोई खेल खेलने की उत्सुकता दिखाते हैं। सब एक कागज पर शब्द लिखते हैं और एक-एक कागज पर लिखा गया शब्द पढ़ा जाता है। और लोग उसमें एक नया अर्थ निकालते है। अंत में मतलब मिल जाता है। कमरा, बाथरूम, सेक्स, शाह आदि। सब गंभीर हो जाते हैं। नौकर भोजन के लिए मेज लगाने की आज्ञा मांगता है। ट्यूटर आकर इतने में अपनी डिक्शनरी खोलने लगता है।

युवक ने ट्यूटर से पूछा कि आपसे पापा की बातचीत हुई? उसने कहा कुछ नहीं उन्होंने कहा कि आने वाली जनरेशन चाहे बिल्ली की हो या सांपों की, पर हमसे अच्छी होगी। युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है और एक कुर्सी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकालकर जलाता है।

समीक्षा

प्रश्न ३- 'उसर' नामक नाटक की समीक्षा कीजिए।

उत्तर -- भुवनेश्वर की रचनाशीलता उनके ऐतिहासिक नाटकों में देखने को मिलती है। भुवनेश्वर एक प्रौढ़ रचनाकार हैं। 'उसर' नामक नाटक में मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन और हास्यास्पद स्तर के बिखराव को बड़ी बारीकी से दिखाया गया है। आपसी रिश्ते इस हद तक खत्म हो चुके हैं कि आदमी-आदमी के सम्बन्ध की तुलना में आदमी और कुत्ते का रिश्ता ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। नाटक के आरंभ में लड़का कुत्ते के साथ है, गृहस्वामी के साथ नहीं है। गृहस्वामी दोहरे चेहरे वाला आदमी है, जिसकी पत्नी की अपनी ग्रन्थियां हैं। पूरे वातावरण में अश्लील और काफी हद तक भीतर-भीतर सड़ती हुई ग्रंथियां पाई जाती हैं जिसमें लड़का, गृहस्वामी, ट्यूटर, मोटी रमणी, गृहस्वामिनी, लड़कियां आदि हैं। यह सब एक साथ नहीं हैं। परन्तु सब अकेले और अजनबी हैं। इनसे एक माहौल बनता है, जिसका मतलब है कि आगे आने वाली पीढ़ी चाहे बिल्ली की हो या सांपों की; इनसे अच्छी होगी।

भुवनेश्वर की 'उसर' नाटक से गृहस्वामी का व्यक्तित्व बँटा-बँटा सा है। उसकी बातों में कोई सामंजस्य नहीं है। वह भीड़-भड़क्के से बहुंत घबराता है, लेकिन अपने पास भीड़ एकत्रित किये रहता है। उसकी आमदनी बहुत कम है, वह आसानी से ट्यूटर को पैसा भी नहीं दे पाता। लेकिन उसका कहना है कि मैंने ट्यूटर की मदद करने हेतु उसे अपने पास लगाया है, क्योंकि ट्यूटर पढ़ा-लिखा होने पर भी बेरोजगार है। लेकिन शिक्षा के कारण उसकी दिमागी बनावट मध्यवर्गीय है। इसलिए ट्यूटर भी गृहस्वामी के घर नौकरी करते हुए भी इस घर के सभी लोगों से अपने को ऊंचा समझता है और थोड़े से पैसे के लिए की जाने वाली अध्यापकी के मामले में उसका ख्याल है कि वह इन्टेलेक्चुअल एक्सपेरिमेंट कर रहा है। इस मध्यम वर्ग की औरतों का यह चरित्र है कि उनके दिमाग में सेक्स

ाजली अंधेरा शाह नजक रोर जैसी परस्पर विरोधी टकराहटें हैं जो इस र्ग से सभी पक्ष अपूर्ण वासना चक्र का संकेत करती है। अतः हम कह कते हैं कि इस नाटक में भुवनेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन ौर हास्यास्पद स्तर के बिखराव को बड़ी बारीकी से दिखाया है।

पर्दे के पीछे

प्रश्न ५ - 'पर्दे के पीछे' नामक नाटक का सारांश अपने शब्दो लिखिए।

उत्तर — 'पर्दे के पीछे' नामक नाटक में उदय शंकर भट्ट ने जीपतियों के चरित्र का उद्घाटन किया है। भट्ट ने इस नाटक के माध्यम दर्शाया है कि इस वर्ग के हर आदमी के दो चेहरे होते हैं। एक चेहरा वह है जो धर्म, त्याग और दयनीयता का है, जो अपने हाथ में माला लए राम नाम का जप करता हुआ पक्षियों के लिए भी अस्पताल खुलवा कता है। अपने कर्मचारियों पर दया दिखाकर उन्हें कुर्ता दे देता है ौर जो चन्दा मांगने वाले होते हैं उन्हें चन्दा दे देता है और अफसरों ो खुश करने के लिए उनकी खुशामद किया करता है तथा हर समय शिष्टता पूर्ण आचरण करता है जिसकी दया और शालीनता का वर्णन राबर अखबारों में प्रकाशित होते रहते हैं। नाटक में सेठ छितरमल जिनकी उम्र लगभग ४२ की है तथा उनके शरीर की बनावट दोहरे बदन ी है। सेठ के काका चांदीराम दो कांग्रेसी व्यक्ति लालचंद और नेमिचंद, दीनू व मुनीम डाक्टर, किराएदार तथा अन्य व्यक्ति अपना अभिनय करते है। नाटक का आरंभ डाक्टर के आगमन तथा दीनू के साथ वार्तालाप से होता है। डाक्टर सेठ छितरमल से मिलने आया है। दीनू को खांसी आती है। डाक्टर सेठ जी के अस्पताल में नौकर है। डाक्टर और मुनीम की बातें होती हैं। डाक्टर मुनीम को बाजार का खाना खाने के लिए मना करता है। डाक्टर मुनीम से कहता है कि तेल की कचौड़ी रोग पैदा करती है इससे लीवर खराब होता है। वो इन्टेस्टाइन में जाकर जम जाती है।

सेठ के पिता का भाई शुद्ध मारवाड़ी है। सेठ जी आते हैं और मुनीम से बहियाँ बदलने की बात का समर्थन करते हैं और अधिकारि को घूस देने की राय बताता है। सामने खड़ा होकर अपने जूते की इशारा करके कहता है कि यह चाँदी का चाहिए।

सेठ डाक्टर के आने के बारे में पूछता है। डाक्टर सेठ परम्परा और गौरव की तारीफ करता रहता है कि इस अस्पताल कारण सारे देश में आपका नाम हो रहा है। डाक्टर कहते हैं कि जी मनुष्य के लिए तो सभी अस्पताल खोलते हैं; जानवरों के लिए सरकार ने अस्पताल खोले हैं परन्तु आपने पक्षियों और जानवरों दो के लिए अस्पताल खोला है, इस कारण आपका सर्वत्र नाम हो रहा सेठ कहता है कि क्या मेरा नाम अखबार वगैरह में निकला है। नौव कहता है कि जी हाँ, यह लीजिए 'आदर्श' ने लिखा है कि सेठ छितरम जैसा दानी परोपकारी व्यक्ति होना दुर्लभ है। यह पशु-पक्षियों चिकित्सालय के संबंध में एक लेख लोकमंच में निकला है। इसी बी सेठ के काका चांदीराम का आगमन होता है। वह आते ही डाक्टर शिकायत करता है। डाक्टर अपनी तनख्वाह बढ़ाने के लिए कुछ कह चाहता है मगर उल्टे उसे हल्की फुलकी फटकार मिलती है। चांदीरा कहता है सेवा का भाव रखो, स्वर्ग मिलेगा। देखो डाक्टर, सुना है आप अपनी प्रैक्टिस भी शुरू कर दी है यह ठीक नहीं है। डेढ़ सौ रुपए नग तनख्वाह का मिलता है फिर उसी से गुजारा करो। डाक्टर कहता है कि सबकुछ मंहगी है, भूखे रहकर कैसे सेवा कर सकते हैं। तीन बच्चे बीवी और एक बूढी माँ। मगर सेठ पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता चांदीराम सेठ से बातें करने लगता है, सेठ आपका नाम यश और प्रचार चाहता है तथा अपने मुनीमों से बहियां बदलवाकर नम्बर दो का पैसा कमाता है।

बड़े मुनीम के सुझाव पर कि डाक्टर के एक रिश्तेदार इनकम टैक्स अफसर है, सेठ कुछ नरम पड़ता है और डाक्टर को उसे मनाने के लिए भेजता है। डाक्टर आता है और कहता है—पेट नहीं भरता सेठ

जी, नहीं तो हम भी सेवा ही करते हैं। चांदीराम गोमुखी हिलाता है, झीसा आता है कितना काम हो गया रे .... रे कहता है। सेठ कहता है हां तो डाक्टर साहब सोच लो प्राइवेट इलाज करना तो तुम जानों ठीक नहीं है आज मैने तुम्हें इसलिए बुलाया है। डाक्टर गिड़गिड़ाता है और कहता है फिर सेठ जी तनख्वाह ही बढ़ा दीजिए। सेठ कहता है— लूट का माल है डाक्टर या कोई फोर भंडार खोल रखा है। डाक्टर फिर कहता है सेठ जी भूखे रहकर फिर कैसे सेवा हो सकती है?

सेठ ब्लैक में लाखों कमाता है और नौकरों को केवल एक-एक कुर्ता बांटता है। इसी बीच दो खद्दरधारी लालचंद और नेमिचंद सेठ से मिलते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। सेठ उन दोनों की विधिवत खातिर करता है और ये लोग चंदे के लिए सेठ से ५०० रुपए लेते हैं।

सेठ उनसे अपनी फरियाद करता है, अपने घर में रह रहे किराएदारों को तंग करता है तथा उनके ऊपर अपना तेवर दिखाता है। परन्तु जब उन्हें काम का आदमी समझता है तो अपने उस तेवर से ले लेता है, इस दोहरे चेहरे का इस्तेमाल यह पूरा वर्ग करता है। चाहे सेठ छितरमल हो या चांदीराम या कोई भी हो। नाटककार उदय शंकर भट्ट ने इस नाटक के जरिए पूंजीपतियों के वर्ग-चरित्र को सामने लाने के लिए ही इस नाटक को रचनात्मक आकार दिया है।

नाटक में सेठ के यहाँ जो चंदा वाले आते हैं। उनसे शंकर कहता है हम तो आपके राज में पिटे जा रहे हैं। न कोई सुनता है और न कोई देखता है किसी ने शिकायत कर दी कि हम ब्लैक मार्केट करते हैं। सेठ कहता है हमने उनसे कह दिया कि आप माई-बाप हैं। हमारी जिन्दगी कांग्रेस की सेवा करते बीती है; भला हम क्यों ब्लैक मार्केट करने लगे। बहियां मांगी है, परसों रात को पुलिस के आदमी आ गए। खैर मैंने बात में जैसे-तैसे उन्हें टाल दिया, नाक में दम कर रखा है। साहेब इसलिए प्रार्थना है दो कांग्रेसी उन्हें मिलते हैं उनके जाने पर सेठ कहता है ये लोग भी कांग्रेसी हैं। ये सभी हमारी तरह ही स्वार्थी और धनलोलुप हैं । इनके राजसी ठाठ हैं मकान, कोठी , मोटर.

को भी भले की बात है कि ये कुछ नहीं करते तो पैसा क्या आकाश से फूट कर आता है। अभी-अभी नेमिचंद ने दस हजार का शेयर खरीदा है मैं ब्लैक मार्केटिंग करता हूं ये सहायता करते हैं। ये स्वयं भी उतने डूबे हुए हैं जितना कि मैं। सेठ और भी कहता है कि पाप कौन नहीं करता। मैं ही केवल पाप नहीं करता, बल्कि ये सभी लोग भी पाप करते हैं। मैं पाप करता हूं तो धर्म भी करता हूँ, ब्राह्मणों को भोजन कराता हूँ, गरीबों को अन्न भी बंटवा देता हूँ। पशु-पक्षियों की सेवा करता हूँ। उनके लिए मैंने अस्पताल खुलवा रखे हैं। उनकी बीमारी दूर होती क्या वे सब पाप धो डालने में सहायक नहीं होते।

इतने में सेठ के मकान का किराएदार आता है और कहता है सेठ जी दया कीजिए। कुछ दिन और ठहर जाइये। हम आपका सब किराया चुकता कर देंगे। मकान भी खाली कर देंगे। ये दरोगा जी मेरा सामान मकान से बाहर कर रहे हैं। सेठ कहता है ये तो ठीक ही कर रहे हैं। इधर एक साल से तुमने किराया भी तो नहीं दिया है।

किरायेदार कहता है कि सेठ जी आप ने ही तो किराया नहीं लिया। मगर सेठ पिघलता नहीं और धमकी देता है। वह किरायेदार की पत्नी का गहना मांगने लगता है। किरायेदार के साथ उसके लड़की और लड़के दोनों आये हैं। सेठ की धमकी सुनकर बच्चे जोर-जोर से रोने लगते हैं इसी समय इन्स्पेक्टर आता है और किरायेदार से मिलता है और बच्चों के सिर पर हाथ फेरते हैं। बड़ा मुनीम समझता है कि इनकम टैक्स आफिसर किरायेदार के रिश्तेदार हैं।

अफसर कहता है कि ये मेरे रिश्तेदार हैं। बच्चे सिसकते हुये चुप हो जाते हैं। तब सेठ उन बच्चों के सिर पर हाथ फेरता है।

प्रश्न ६- परदे के पीछे नामक नाटक की समीक्षा कीजिए।

उत्तर – नाटककार उदयशंकर भट्ट ने पूजीपतियों के चरित्र का पर्दाफाश किया है। उनका चरित्र दो प्रकार का होता है। एक पर्दे के पीछे और दूसरा बाहर। पर्दे के पीछे सभी अनाचार करते हैं। ऐसे लोग किसी पर दया नहीं करते। ब्लैक मार्केट में अपना व्यापार चलाते

और इससे ज्यादा धन कमाते हैं। गरीबों का शोषण करते हैं। तथा किरायेदारों पर ज्यादती करते हैं। दूसरी तरफ गोमुखी फेरते हुए बात-बात में धन-लाभ, दया आदि का दम्भ भरते हैं हाथ में माला लिये हर समय राम-राम जपते हैं। अखबारों में अपनी प्रशंसा छपवाने हैंतु यश और नाम हेतु पशुओं पक्षियो के अस्पताल खोलवाते हैं। अपनी महत्ता की खबरें अखबारों में छपवाता है। इस प्रकार नाटक के जरिये हम यह कह सकते हैं कि पूंजीपतियो के दो रूप हैं दो तेवर होते हैं। इस प्रकार अपने दोनों स्वरूप का इस्तेमाल पूरा-पूरा पूँजीपति वर्ग करता हैं। नाटककार उदय शंकर इस नाटक के जरिये पूँजीपतियों के काले पीले कारनामों पर करारा घंमड हैं। पूंजीपतियों के ब्लैक मार्केटिग जैसे कार्यों से उनके कर्मचारियों में किसी प्रकार का आवेश पैदा नहीं होता है।

दूसरी तरफ बात-बात में धर्म, त्याग, दया आदि का दम्भ करते हैं। तथा हाथ में माला लिये हर समय राम-राम का जप करते हैं। अपने यश और ख्याति के लिए पशु-पक्षियों का अस्पताल खोलते हैं। तथा चन्दाखोरो को चन्दा देते हैं। अपनी प्रशंसा अखबारों में छपवाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन पूँजीपतियों के दोहरे चेहरे हैं यह पूँजीपतियों का वर्ग अपना दोहरा चेहरा लगाये हुए सर्वत्र विद्यमान हैं। इन दोहरे चेहरे का इस्तेमाल यह पूरा पूँजीपति वर्ग करता हैं। नाटककार ने इस नाटक के जरिए पूँजीपतियों के वर्ग-चरित्र को समाज के सामने लाने का प्रयास किया हैं।

नाटककार ने पीछे-पीछे नामक एकांकी में पूजीपतियों के सच्चे स्वरूप का प्रदशन किया है। पूंजीपतियों के कार्यक्रमो में उनके कर्मचारियों का कोई अहम भूमिका नहीं होती हैं। पूँजीपतियों के कर्मचारियों में आप में किसी तरह का आवेश एवं संगठन देखने को नहीं मिलता।

वे केवल कठपुतली की भांति मंच की शोभा बढ़ाकर पर्दे के पीछे चले जाते हैं। नाटकीय मोड़ में यह सब थी यह गम्भीरता दब-सी गयी हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह एकांकी अपने-आप में सफल हैं। इसमें एंकाकी की सारी समान सम्भावनायें पायी जाती हैं।

विषकन्या

प्रश्न ७- विषकन्या नामक नाटक का सारांश लिखिए।

उत्तर– गोविन्द बल्लभ पन्त की रचना 'विषकन्या' एक सफ ऐतिहासिक नाटक है। नाटककार ने अपनी इस नाटिका के ज मध्य-कालीन युग में शत्रुओ कों वशीभूत करने के लिए रूपव लड़कियों को बचपन से ही विष देकर विषकन्या के रुप में विकसि किया जाता है। इसका वर्णन किया है उन रूपवान लड़कियों को लति कलाओं का ज्ञान दिलाने के अतिरिक्त राजनीति और कूटनीति की शिक्षा दी जाती थी जिससे वे सभी अपने शत्रुओं को अपने सौन्दर्यजा में आबद्ध कर सके और जैसे वे शत्रु उन कन्याओं के साथ सहवास आंवे बस आते ही अनाथ उनकी मृत्यु हो सके। विषकन्या एकांकी अपराजिता एक ऐसी ही सुन्दर कन्या है। इस नाटक में २ पात्र चन्द्रविजय एक राजा है और अपराजिता विजित पक्ष की सुन्दर कन है। चन्द्रविजय के दो सेनापति हैं। दुर्ग विजय करने के पश्चात् विजे महाराज चन्द्रविजय अपने दोनो सेनापतियों के साथ दुर्ग में प्रवेश कर हैं। दुर्ग में आने पर दुर्ग के चारां ओर नजर दौड़ाने पर भी उन्हें को दिखायी नहीं देता है। उन सभी लोगों का अनुमान है कि किले के सा लोग सुरंग के जरिये किले से कहीं बाहर निकल गये थे। दूसरे वा सेनापतियों को किसी के सांस लेने की आहट लगती है। वह चौंक क इधर-उधर देखता है परन्तु कोई दिखाई नहीं पड़ता हैं।

महाराजा को दुर्ग का एक कक्ष अच्छा लगता है, जहाँ उनके विश्रा की व्यवस्था हो गई है। दोनों सेनापति महाराज को वही विश्राम करने क सलाह देते हैं। महराज अपना मुकुट,खड्ग आदि उतारकर रख देते हैं इसी समय उनका ध्यान किसी के श्वॉस से सतर्क हो उठता है। वे चकित होकर इधर-उधर देखते हैं और शैय्या की चादर उठाक भौंचक्के रह जाते हैं। एक अपूर्व सुन्दर लड़की सामने प्रगट हो

ाती है। वह अपने को राजकुल की रमणी बताती है। उसके कहने से जा कक्ष का सांकल भीतर से बन्द कर देता है।

वह अपना नाम अपराजिता बताती है। राजा के पूछने पर वह हती है कि भोजन के अभाव में पिता को दुर्ग-रक्षा की अन्तिम आशा ोड़नी पड़ी और वे कल आधी रात परिवार सहित दुर्ग छोड़कर चले ये, मैं अकेली वहां छूट गई। एक रस्सी के सहारे सब लोग दुर्ग ोड़कर निकल गये। मेरा साहस नहीं हुआ। अन्त में वह रस्सी भी टूट ई। राजा ने उसे आश्वस्त किया कि तुम्हारा यहां कोई भी अहित न गा। अपराजिता रोने लगती है।

इसी बीच बाहर से कोई द्वार खटखटाता है। एक सैनिक दीपक लिए प्रकाश लाता है। अपराजिता छिपने का प्रयास करती है, लेकिन जा सैनिक के हाथ से दीपक लेकर द्वार ढंक देता है। अपराजिता ीपक को अपने दोनों हाथों में ले लेती है। अपराजिता की भाव-भंगिमा ौर मुख-मुद्रा देखकर राजा मन ही मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता । अपराजिता उससे अपने पिता के पास जाने का स्वांग रचती है। वह सकी बातों में उलझता जाता है। राजा उसका हाथ पकड़ना चाहता परन्तु वह कहती है कि बिना माता-पिता की आज्ञा के मैं यह स्वीकार हीं करूंगी; राजा उसे मुक्त रूप से जाने का आदेश देता है।

अपराजिता राजा से शरण मांगती है और पैरों पर गिर जाती । अब राजा उसे अपने हृदय की अधिष्ठात्री बनाना चाहता है और ावेश में कहता है — कर्म के साथ इसकी संधि के लिए यह दीपक ाक्षी है। तुम्हें पाकर कृतज्ञ हो गया मैं। मुझे ज्ञात न था कि वज्रकूटों बीच में मुझे तुम्हारे समान कुसुम कोमलांगना प्राप्त हो जाएगी। वह पने मस्तिष्क का शीशमणि उतार देती है। राजा उसके मस्तक पर ड्ग की धार से सिन्दूर की पहली रेखा अंकित करने का प्रयास रता है। इतने में दोनों सेनापति बाहर से द्वार खटखटाते हैं। पराजिता घबराकर शैय्या के नीचे चली जाती है। दोनों सेनापति

आ जाते हैं परन्तु चौकी पर नारी की शीर्षमणि देखकर चौंकते सेनापति सूचित करते हैं कि लगता है जंगल में प्रकाश फैलाकर लोग एकत्र हो रहे हैं। राजा उनपर कोई ध्यान नहीं देता और अवहे करता है। वे बार-बार संकेत करते हैं कि जीवित शत्रु की सेना ए होकर उल्काओं के प्रकाश में आगे बढ़ रही है, परन्तु राजा उन्हें निश्चि होकर जाने के आदेश देता है। राजा की काम-पिपासा बढ़ रही थी, सेनापति राजा के व्यवहार को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे।

अपराजिता के मस्तक पर सिंदूर की रेखा खींचकर जैसे ही उसके कंधे पर हाथ रखना चाहता है कि द्वार पर खटखटाहट होती एक सैनिक भोजन पर उपस्थित होने की प्रार्थना करता है। अपराजि राजा के साथ जाने को प्रस्तुत होती है कि दोनों सेनापति बाहर दरवाजा खटखटाते हैं और द्वार खोलकर भीतर आ जाते हैं। दोनों श करते हैं कि राजा किसी रमणी के मोहपाश में पड़ गया है। दोनों के पर अपराजिता आती है और द्वार बंदकर जल्दी-जल्दी एक ताड़पत्र कुछ लिखकर उसे अपने कंचुकी के भीतर रख लेती है। अपराजि वन-कपोत के पिंजरे के पास आती है और ज्योंही पिंजरे का द्वार खोल चाहती है कि राजा आ जाता है। अपराजिता राजा से नींद आने बहाना करती है।

अपराजिता बिना किसी शिकन के कपोत को उड़ा देती है शत्रु-सेना आ जाती है। यह चमत्कार है कि चन्द्रविजय अपने सम और कर्तव्य में से कर्तव्य को ही चुन लेता है, क्योंकि उसके सेना उसके इस कार्य की निन्दा करते हैं उसका अपमान करते हैं और उ मुख पर थूकते हैं तब उसका सोया अभिमान जागता है और उ समझ में आ जाता है कि इन सब का कारण अपराजिता का सौन्दर्य इसी ने मुझे कर्तव्यच्युत किया है। वह क्षुब्ध होकर अपराजिता के पेट खड्ग चुभा देता है और उसके हाथ में खड्ग देकर अपने ऊपर करने का आदेश देता है परन्तु अपराजिता के शिथिल हाथों से ख

गिर जाता है और तभी चन्द्रविजय को अपराजिता का शत्रु को लिखा ताड़पत्र मिलता है जिसपर लिखा है कि योजना सफल हो गयी। मैंने विजय को अपने मोहजाल में फंसा लिया है। १–२ घंटे में मैं इसे समाप्त कर ही डालूंगी। दुर्ग के गुप्त द्वार पर तीन बार वियाड़, बजाना मैं उसे खोल दूंगी—तुम्हारी विषकन्या। इन पत्रकों से चंद्रविजय की आंखें खुल जाती हैं और वह कर्तव्य पथ पर पुनः अनुसरित होता है। सेनापति उसकी जयकार करते हैं। संक्षेप में विषकन्या की यही समीक्षा है।

समीक्षा

प्रश्न ८- 'विषकन्या' नामक नाटक की समीक्षा कीजिए।

उत्तर – गोविन्द वल्लभ पंत की रचना 'विषकन्या' नामक नाटिका में विजेता चंद्रविजय को अपराजिता अपने सौंदर्य से उसको वश में कर लेती है और अपनी भाव-भंगिमा और रूपशील से राजा के प्रलोभन का स्वप्न बन जाती है। विजेता उसके शारीरिक प्रलोभन से इतना आकर्षित हो जाता है कि वह अपनी सारी जिम्मेदारी भूल जाता है। अपराजिता शत्रु-सेना को संकेत करती है और शत्रु-सेना आ जाती है, लेकिन सेनापतियों की निन्दा पर उसका नैतिक मन जागरूक हो उठता है और फिर वह मोह और कर्तव्य में से मोह को छोड़कर कर्तव्य का मार्ग चुनता है। क्रोध में आकर वह अपराजिता का वध कर देता है और शत्रुओं से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है। अपराजिता के पेट में खड्ग भोंक देता है।

नाटककार ने अपने इस विषकन्या नामक नाटक में चलती भाषा का बहुत ही अच्छा उपयोग किया है। पात्रों एवं नाटक के घटनाक्रमों के सह-सम्बन्ध से यह लगता है कि नाटक ऐतिहासिक परिवेश को अपने में समाहित किए हुए है। इस नाटक की भाषा एवं इसकी रचना वर्तमान काल में होकर भी अतीत काल का बोध कराती है। वास्तव में यहाँ पर हम यह कह सकते हैं कि अपराजिता के जीवन का विषाद (कष्ट) ही

मुख्य रूप से इस नाटक का असली नाटक है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि लेखक को इस-'विषकन्या' नाटक में अपने उद्देश्य पूर्ण सफलता मिली है।

गोविन्द वल्लभ पंत की रचना 'विषकन्या' नामक नाटक में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नाटक की भाषा संरचना से संबंधित है। साधारणतः ऐतिहासिक नाटककार तत्सम ऐतिहासिक शब्दों, वेशभूषा और बोलने-चालने की पद्धतियों की सहायता से ऐतिहासिक वातावरण की रचना करते हैं। विषकन्या के लेखक गोविन्द वल्लभ पंत के इस नाटक में घटनाओं और पात्रों के सह-सम्बन्ध से यह नाटक धीरे-धीरे इतिहास में अतिक्रमित होता है। नाटक की पूरी-पूरी भाषा-संरचना वर्तमान-कालिक होते हुए भी आंतरिक स्तर पर अतीतकालिक है। शायद नाटककार को पता है कि भाषा शब्दों के बाह्य संगठन से नहीं, बल्कि अर्थ से संप्रेषित होती है। नाटक जिस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देता है वह अपराजिता से ही संबंधित है। इस तरह की लड़कियां चाहे राजकाज को जितनी कुशलता से पूरा कर लेवें, उनका सौंदर्य, उनकी कला क्या उनके सार्थकता से भी जुड़ सकती है?

नाटक में विजेता चंद्रविजय को पराजित करने के लिए अपराजिता ने अद्भुत कुशलता से चंद्रविजय का हृदय जीता है। अपने रूपयौवन सुंदरता से थोड़ी ही देर में वह चंद्रविजय को प्रसन्न कर उसके हृदय में अपना स्थान बना लेती है। चंद्रविजय उसकी शारीरिक सुंदरता से वशीभूत हो जाता है। चंद्रविजय अपराजिता के मोहजाल में इतना उलझ गया है कि अपनी सारी राजकीय जिम्मेदारियां भूल जाता है। अपराजिता बिना किसी संकोच के शत्रु-सेना की ओर संदेशवाहक कपोत को उड़ा देती है। उसके चेहरे पर जरासी भी शिकन नहीं है। शत्रु-सेना आ जाती है। यह चमत्कार है कि चंद्रविजय अपने मोह एवं कर्तव्य में से एक का चुनाव करते हैं । वह सम्मोहन को त्यागकर कर्तव्य को चुन लेता है और एक मध्यकालीन नायक की तरह अपराजिता

पुष्पराज घिमिरे पंकज कार्की

की हत्या कर देता है।

स्त्री जीवन की यह करुणा नाटक के बाहर पड़ कर भी नाटक को बहुत दूर तक फैला देती है। 'विषकन्या' नाटक का अभिप्राय घटना की इति या राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के बाद भी है। दरअसल अपराजिता के जीवन का विषाद ही इस नाटक का असली उद्देश्य है।

प्रश्न ६- जगदीश नारायण माथुर की 'बन्दी' का सारांश अपनी भाषा में लिखिए।

उत्तर – नाटककार जगदीश नारायण माथुर ने अपनी 'बन्दी' में स्वतंत्रता के बाद बदलते हुए गावों की जो दशा है उसका यथार्थ चित्रण इस नाटक में किया है। नगर में रहने वाले यह समझते हैं कि गांव के रहने वाले लोगों में सरलता, सच्चाई, ईमानदारी और सद्भाव के भाव विद्यमान होते हैं। फल-फूल रहे नगर का निवासी गांव को स्वर्ग समझता है। जाती नगरवासी कहते हैं, गांवों में जाने पर मनुष्य को शहरी तनाव से मुक्ति मिल सकती है इसी विचार से प्रभावित होकर हाईकोर्ट के जज राय साहब अपनी लड़की हेमलता के साथ अपनी पुरानी जमींदारी के गांव में आते हैं। राय साहब अपनी पुत्री हेमलता को गांव का चप्पा – चप्पा दिखाकर परिचय करवाते हैं। वहीं पर एक युवक वीरेन आने वाला होता है जो प्रगतिशील विचारधारा वाला व्यक्ति है। उसकी शिक्षा ग्रेजुएट तक है। हेमलता उसे गांव के दृश्य व प्राकृतिक शोभा दिखाकर प्रसन्न करना चाहती है। हेमलता गांव में ही रहना चाहती है गांव में एक मजदूर है, जिसका नाम चेतराम है, वह हेमलता की सेवा में लगा रहता है और आया उसके भोजन वगैरह का प्रबंध करती है। चेतराम को राय साहब चैतू कहते हैं, वह उनके पुराने नौकर का पुत्र है। गांव का भी पुराना स्वरूप बदल गया है। नयी–नयी टोली बस गयी है। कई घर बाढ़ आने से बह गए थे। अभी भी वहां पर चारो ओर गन्दगी और गरीबी विद्यमान है। हेमलता गांव को आदर्श गांव मान बैठी है। वह चित्रकार भी है। गांव में जो गरीब लोग हैं, उनका

चित्र वह बनाना चाहती है। उसकी रुचि है कि मैं गांव के गरीब लो का चित्र बनाऊं। थोड़ी देर बाद वहां पर वीरेन आता है और कहता कि मैं तो किसी तरह से चौधरी साहब से पल्ला छुड़ा कर भाग आ हूँ। हेमलता वीरेन से कहती है कि मुझे तो कलकत्ते की चहल-पहल यहां का शान्त संगीत ही अच्छा लगता है। वीरेन गांव का ग्रामोत्था करना चाहता है। वह चाहता है—गांव की काया-पलट करना। वीरे ग्रामोत्थान समिति की स्थापना करना चाहता है। इतने में चौधरी साह के सामान के साथ बालेश्वर आता है।

बालेश्वर का असली नाम बी. पी. सिन्हा है। उसके सा करमचंद बरेठा है। जो बच्चू बाबू का चचेरा भाई है। बालेश्वर चौध साहब का भतीजा है। बालेश्वर और करमचंद दोनों इस बात क स्वीकार करते हैं कि देहात में कोई लाइफ नहीं है। जब से ये लोग शह से लौटे हैं देहात उन्हें पिछड़ा मालूम पड़ता है।

आजादी के साथ गांवो में एक अजीब तरह की हिंसक आवार उदासीन स्वतन्त्रता घुस गयी है। दरिद्रता के बरकार रहते हुए भ दयनीयता खत्म हो गयी है। शहर के आदमी की तुलना में कहीं बहुत ज्यादा जागरुक और भोंड़ी सत्ता-लोलुपता गांव के आदमी का सुख ब गयी है। बन्दी में बालेश्वर और करमचन्द इसी सत्ता-लोलुपता को बहुत दूर तक तीखी सच्चाई के साथ प्रमाणित करते हैं। गांव के ये जागरुक आदमी दिमागी तौर पर सामन्ती और लालची हैं। लालच ने उनके जीवन के भोलेपन को ही निगल लिया है। इस हद तक कि चौधरी साहब जैसे अंग्रेजीयत की अवशेष व्यक्ति का विदूषकीकरण औ मनुष्यत्व भी उनके लिए निर्लज्जता की वस्तु है। निर्मला, बालेश्वर और करमचन्द्र यह मानते है कि देहात में कोई लाइफ नहीं है। वे कहते है कि जब से हम शहर से आये हैं मानो यहां बन्दी बन गये हैं। वे दोनों बालेश्वर और करमचन्द्र कम पढ़े लिखे हैं तथा बेरोजगार हैं वे दोनों गांव में क्लब की स्थापना करना चाहते हैं। उनसे रायसाहब को पता

चलता है कि इस गांव में भी पोलिटिक्स हो रही है वीरेन राय साहब को क्लब के पदाधिकारियों की संख्या व अन्य विवरण बताता है। बालेश्वर कहता है कुछ सुकुर लोग क्लब को अपने ही मुहल्ले में खोलना चाहते हैं। वह यह भी कहता है कि पदों के लिए भी आपस में तनाव है। इसी दौरान वीरेन भी वहीं आ जाता है। तीनों एक साथ कमरे में बैठकर आपस में वार्तालाप करते हैं।

वीरेन अपनी योजना के बारे में राय साहब को अवगत कराता है वह कहता है कि ग्रामवासियों को कम से कम इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिए, जिससे वह अपनी समस्याओं और जरूरतों पर विचार कर सकें। देहात के लोगों को प्रायः पढ़े-लिखे न होने के कारण उनकी अवस्था मूक जैसी है। कुछ चुने हुए नौजवानों की जो अपने प्रयत्न से धरती की घुटनों को गगन के गर्जन का रूप दे सकें जो ग्रामों में आर्थिक उन्नति कर सके।

प्रश्न ६ - जगदीश नारायण माथुर की बन्दी नाटक की समीक्षा कीजिए।

उत्तर – 'बन्दी' का एकमात्र उद्देश्य स्वतन्त्र भारत के ग्रामीण परिवेश को मुखरित करना रहा है। जिसमें आधुनिक जीवन की दुष्प्रवृत्तियों का फल आदर्श जीवन को नष्ट कर रहा है। मनुष्य अपने ही परिवेश का सही मूल्यांकन नहीं कर पाता है। बन्दी का गांव (जिसका नाम दिया गया है) ऐसा ही गांव है, जिसमें अर्द्धशिक्षितों के अल्प ज्ञान से गांव का वातावरण दूषित हो जाता है और गांव दो दलों में विभक्त होकर हिंसा का कारण बन जाता है। रिश्ते-नाते टूट जाते हैं भतीजा ही चाचा पर प्रहार करता है, जबकि इसी गांव के नवयुवक राय तरानाथ अपने बुर्जुर्गों के अनुशासन में रहकर शिक्षित होकर जज की नौकरी प्राप्त करते हैं। नगरीय जीवन में सम्मान पाते हैं। पर वही जब अवकाश ग्रहण कर पुनः गांव में बसने आते हैं तो उनका ग्रामीण परिवेश से समन्वय स्थापित नहीं हो पाता है और वे पुनः शहर लौट जाते हैं।

ग्रामीण जीवन का यह तनाव सम्पूर्ण ग्रामीणों का है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इसके प्रभाव से गांव का मेहनतकश प्रभावित नहीं होता। फिर उसके पास अवकाश नहीं है कि वह फालतू की चीजों में उलझे। उसे तो दिन-रात परिश्रम करना है। रोटी जुटाना है, पेट भरना है। प्रस्तुत नाटक का मूल अभिप्राय ऐसे ही वर्गों का सन्दर्भ है क्योंकि नागरिक गांव के रीढ़ हैं। इन्हीं के विकास पर गांव का विकास सम्भव है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए डा० शुकदेव जी ने लिखा है— मेहनत और उसके नतीजे में एक सीधा विश्वास है। कोई लालच या उच्चवर्गीय भ्रष्टता नहीं है। यहां गरीब और मेहनती आदमी रहते हैं जो अच्छे कपड़ों, घरों और हर तरह के जीवों व पराये जीवों ओर लालच से नावाफिक है। लोचन इसी दुनिया में घुस कर मैले-कुचैले कपड़े और सख्त मेहनत से विश्वास का माहौल तैयार कर रहा है। दरअसल गांव का असली चेहरा यही है और जरूरत इस बात की है कि गांवों को उसकी वास्तविकता के भीतर में विकसित किया जाय और गांवों को घुस-पैठ करने वाले सामन्ती सफेदपोश दोगलेपन से बचाया जाय।

प्रश्न १०- 'और वह जा न सकी' नाटक का सारांश अपने शब्दों में लिखिये।

उत्तर — 'और वह जा न सकी' विष्णु प्रभाकर के लेखकीय व्यक्तित्व से सम्बन्धित एकांकी है, जिसमें लेखक शैलेन्द्र के माध्यम से उन सभी श्रमजीवियों की परिस्थितियों और भावनाओं का उद्घाटन किया है जिनमें वे, घुट-घुट कर जीवन-यापन करते है। आर्थिक कठिनाई के कारण उनका पारिवारिक जीवन उजड़ जाता है। आवश्यक वस्तुओं के अभाव में उनका जीवन दुःखित रहता हैं। फिर भी वे साहित्य-साधना करते रहते हैं। गरल को भी अज्ञात रूप में स्वीकार करते हैं।

'और वह जा न सकी' की कथावस्तु का सम्बन्ध श्रमजीवि साहित्य

सेवी के परिवार और परिवेश से सम्बन्धित है, जिसमें प्रख्यात कहानीकार शैलेन्द्र का पारिवारिक जीवन उपस्थित किया गया है। निश्चित आय न होने के कारण शैलेन्द्र का परिवार विघटन के कगार पर पहुंच जाता है। परन्तु चरित्र की शुद्धता और व्यवहार की कुशलता के कारण परिवार का संतुलन कायम रहता है और नाटक के अन्त होते-होते कथानक की ट्रेजडी समाप्त हो जाती है तथा नाटक सुखान्त हो जाता है।

शैलेन्द्र की साहित्यिक प्रतिभा पर मुग्ध होकर शारदा नामक युवती उनसे विवाह करती है। परन्तु जीवन की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उसे वैवाहिक सुख नहीं मिलता, जिससे वह चिड़चिड़ी हो जाती है। परिवार चलाने के लिए उसे दर-दर भटकना पड़ता है। लोगों से उधार लेना पड़ता है और कभी-काल ताने भी सुनने पड़ते हैं। इसके विपरीत शैलेन्द्र घर-गृहस्थी से निश्चिन्त होकर साहित्य-साधना में तल्लीन रहता है। घर आये दोस्तों को दावत देता रहता है। परिणामतः शारदा का कष्ट और बढ़ जाता है। वह इस परेशानी से मुक्त होने का यत्न करती है। कुछ दिन के लिए कहीं जाना चाहती है। परन्तु वह ऐसा कर नही पाती है। उसे यह मालूम हो जाता है कि शैलेन्द्र के मन में अभी भी उसके लिए उतना ही प्यार है जितना विवाह के पूर्व था। यही नहीं शैलेन्द्र उसे ही अपना सब कुछ मानता है। उसके अभाव में वह अपना अस्तित्व स्वीकार ही नहीं करता हैं। इन बातो से शारदा का मन गदगद हो जाता है और वह नहीं जा पाती हैं।

शैलेन्द्र के इन भावनाओं की जानकारी शारदा को उस समय होती है जब शैलेन्द्र शीला से बातचीत कर रहा था। शीला भी उसके ऊपर दिवानी थी और अपने पति का साथ छोड़कर उसके पास आना चाहती थी। परन्तु शैलेन्द्र की भावनाओं को जानकर वह उसका साथ छोड़ देती है।

'और वह जा न सकी' एकांकी का वस्तु-विधान शैलेन्द्र, उसकी

पत्नी शारदा और पुत्र शरत को लेकर किया गया है, जिसमें कार्यकला
के नाना व्यापारों के साथ कथानक को मोड़ दिया गया है।

इस कहानी में श्रमजीवी कहानीकार शैलेन्द्र की परिस्थितियों क
उद्घाटित किया है। जिनमें वह घुट-घुटकर जीवन व्यतीत करता
फिर भी उसे अपने परिवेश से कोई शिकायत नही है। ये परिस्थिति
प्रायः सभी श्रमजीवी लेखकों की है। चाहे निराला रहे हों अथवा प्रेमचं
या जयशंकर प्रसाद; सभी को ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पड़ा है, फि
शैलेन्द्र क्यों न गुजरे परन्तु प्रस्तुत एकांकी में मुख्य शारदा होती है
प्रश्न है दान का बोझ तीसरा क्यों वहन करे ? यह प्रश्न यहां विचारणी
हो जाता है। कदाचित एकांकी में श्रीधर का प्रवेश इसीलिए हुआ है औ
नाटक की मूल समस्या भी यही है। समस्या का समाधान भी नाटकी
ढङ्ग से हुआ है और उसके लिए भी नाटककार को श्रीधर की तरह ए
और पात्र—सखी की कल्पना करनी पड़ी है। सखी संदेश देती है
कहानियां लिखने वाले स्वप्नदर्शी होते हैं-और स्वप्नदर्शियों से प्रेम
सकता है, पर विवाह होना कठिन है। जब इसी तथ्य को शारदा स्वीक
कर लेती है तो कथानक पूरा फलक त्रासदी होने से बच जाता है। फ
भी हो जाता है। क्योंकि स्वप्नदर्शी को पत्नी की नहीं, पुजारिन
जरूरत है। उस पुजारिन की, जो मां का हृदय रखती है, जो अपने
मिटाना चाहती है, जिसके अरमान पूरे हो चुके हैं। जिसकी लालसा
तृप्त हो चुकी हैं। पर मैं......मैं...... तो अभी प्यासी हूँ और जब शार
अपने को इस रूप में ढाल लेती है तो मूल समस्या (ऐसी परिस्थिति
क्या होना चाहिए) का जवाब मिल जाता है और नाटक का फल
नाटकीय तथ्यों से सुसज्जित होकर आकर्षक बन जाता है।

प्रश्न ११– 'और वो जा न सकी' नाटक की समीक्षा कीजि

उत्तर– शारदा का चरित्र एक भारतीय नारी का चरित्र है। उस
यदि परिवार के प्रति उत्तरदायित्व का बोध है तो उसे बच्चे और प
के उत्तरदायित्व का ज्ञान भी है। वह बहुत ही चतुराई के साथ बच्

और परिवार (जिसमें पति के साथ आगंतुक भी आ जाते हैं) उनका पालन-पोषण करती है। परन्तु जब उसे मालूम होता है कि कोई दूसरी स्त्री उसके पति पर आशक्त है और आशक्त होती चली जा रही है तो उसकी अन्तर्मात्मा कराह उठती है। वह यह नहीं चाहती कि किसी अन्य स्त्री की छाया भी उसके पति पर पड़े। वह किसी न किसी रूप में पति पर एकाधिकार बनाये रखना चाहती है। यही कारण है कि शीला का शैलेन्द्र के पास अधिक रहना उसे अच्छा नहीं लगता और वह स्वभाव से चिड़चिड़ा उठती है। भारतीय नारी होने के कारण वह पति का विरोध भी नहीं करती, सबकुछ सहती जाती है। पर जब उसे मालूम होता है कि शैलेन्द्र उसे अपना सबकुछ मानता है। उसके बिना अपना अस्तित्व स्वीकार ही नहीं करता तो वह हर्ष से पागल हो जाती है और सम्पूर्ण जीवन को भूलकर उसके प्रेम में रम जाती है तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि कहानीकार से प्रेम करके कुछ पाने की अपेक्षा उसकी पुजारन बनना ही यथेष्ट है।

एकांकी का दूसरे प्रमुख पात्र साहित्यकार शैलेन्द्र महोदय हैं जिन का मुख्य काम साहित्य-साधना है। इसी की उपलब्धियों पर जीविका निर्भर है। शैलेन्द्र साहित्य-साधना में इतना रमा रहता है कि उसे परिवार का दायित्व याद ही नहीं रहता। कदाचित उसकी इसी मनोवृत्ति के कारण पत्नी शारदा को कष्ट उठाना पड़ता है और उसे क्रमशः बोध होता है कि शैलेन्द्र अब उसे उतना प्रेम नहीं करता जितना पहले करता था; पर ऐसी बात है नहीं। उसे परिवार और शारदा दोनों का ख्याल है लेकिन प्रकट नहीं होने देता; क्योंकि अपनों से प्रेम का प्रदर्शन नहीं किया जाता। इसी प्रकार जब भी उसे कहीं से अर्थ की प्राप्ति होती है तो वह उसे पूरा का पूरा शारदा को सौंप कर छुट्टी ले लेता है। उसमें से कानी कौड़ी की भी उसे आवश्यकता नहीं। जो भी जितना भी खर्च करे शारदा; क्योंकि वही सबकुछ है। उसके बिना, शैलेन्द्र कुछ भी नहीं हैं।

'और वो जा न सकी' एकांकी में शैलेन्द्र के चरित्र का प्रकाशित

करने वाला मुख्य भाग साहित्यिक व्यक्तित्व है, साहित्य-साधना में
रात-दिन डूबा रहता है। कदाचित् इसी कारण वह एक श्रेष्ठ साहित्यक
है, उसे चाहनेवाले अधिक हैं। उसका समाज में सम्मान है। इस का
उसका खर्च आय से अधिक है। परिणामतः आए-दिन अधिक कठि
बनी रहती है।

अन्य पात्रों में शीला और शरद की महत्वपूर्ण भूमिका है। जि
शीला आधुनिक युवती है। कुछ घरेलू बातों से क्षुब्ध होकर वह अपने
का साथ छोड़ना चाहती है। इसके पीछे एक ओर शैलेन्द्र के प्रति
उसका अनुराग भी है जिसमें वह शैलेन्द्र का सान्निध्य चाहती है,
पति के रूप में चाहती है परन्तु ज्यों ही उसे यह ज्ञात होता है कि शैले
सब बताकर भी शारदा को बहुत चाहता है तो भाग खड़ी होती है।
प्रकार उसका चरित्र आधुनिक पढ़ी-लिखी मनचली युवतियों का च
है। शिशु शरद की भूमिका एक शिशु का चरित्र प्रदर्शित करती
जिसमें सरलता और भोलापन साथ-साथ दृष्टिगोचर होता है।

'और वो जा न सकी' शीर्षक की भाषा की तरह नाटक की
भी परिष्कृत भाषा है इसका कारण शिक्षित पात्र है। इस कारण व्यक
की समस्त भाषा का प्रयोग करते हैं। यही नहीं शिशु शरद की भ
भी परिष्कृत है। उसकी भाषा भी शेशवानुकूल न होकर प्रबुद्ध शि
मां बाप के बच्चे की भाषा है का गठन भावों के सन्दर्भ में हुआ
इस कारण भावों से बोझिल भी है पर यह स्थिति सर्वत्र नहीं
कुछ खास स्थानों को छोड़कर उसे स्थान भी नहीं मिला है। इ
स्पष्ट है कि नाटककार ने ऐसी भाषा-संरचना जानबूझकर निशि
उद्देश्य अथवा मिश्रित भावों को व्यक्त करने के लिए ही किया
है। अन्यथा एकांकी की भाषा सर्वत्र ही सरल एवं सुबोध है। साम
पाठक भी उसे समझ सकते हैं। इसके विपरीत भावों से बोझि
भाषा-बोध सामान्य पाठक नहीं कर सकते। वह केवल विशि
पाठकों के लिए ही है, उसकी सार्थकता भी ऐसे ही पाठकों के लिए

प्रश्न १२ – एकांकी की परिभाषा बतलाते हुए इसके स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

उत्तर – एकांकी नाटक का ही एक रूप है। फर्क इतना ही है कि यह अपने संपूर्ण विज्ञानों से अपने पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। डा० रामगोपाल चौहान ने दिल्ली एकांकी के विषय में लिखा है – एकांकी एक अंक का ही नाटक होता है जिसमें एकांकीकार एक ही घटना की नाटकीय लाघव से उसमें औत्सुक्य, सम्भ्रम और विस्मय का सृजन कर उसे चरम सीमा तक विकसित करता है और नाटकीय विस्मय के साथ उसका इसी रूप में अन्त करता है। एकांकी की समस्त घटनाएं और कथा तथा पात्र दर्शक या पाठक के मन, प्राण और भावना के संगी बनकर सांकेतिक रूप से उसके मनोभावों का विषय बन जाते हैं और उसमें विचारों और भावों का अदम्य उत्तेजना उत्पन्न कर देते हैं तथा दर्शक या पाठक की मानसिक स्नायुओं में गुणावगुणों को उत्पन्न कर उसका मनोरंजन करते हैं या उसे दर्शा कर उसके मर्म को स्पर्श कर उसमें कुछ कर सकने का दृढ़ संकल्प उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः नाटकीय अवयवों को ध्यान में रखकर नाटक और एकांकी में किसी प्रकार का भेद नहीं है। लेकिन दोनों के प्रभाव में काफी भेद है। इसरलिए डा० राजकुमार वर्मा के–एकांकी नाटकों में अन्य प्रकार के नाटकों से विशेषता होती है। उसमें एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से कौतूहल का संयमन करती हुए चरम सीमा तक पहुंचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता की भाँति फैलने की विशृङ्खलता नहीं होती – शब्दों में समझा जा सकता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए हिन्दी एकांकी शास्त्र के विद्वान् डा० रामचरण महेन्द्र ने लिखा है कि एकांकी का नाटक से वही संबंध है जो कहानी का उपन्यास से अथवा खण्ड काव्य का महाकाव्य से। नाटकों में जीवन का विस्तार, लम्बाई और परिधि का

विस्तार है, जीवन की भाँति सुविस्तृत है। एकांकी का क्षेत्र सीमित परिधि संकुचित है और जीवन का एक पहलू ही चित्रित करने का प्रया है। एकांकी थोड़े से ही समय में मानव जीवन की एक झांकी मात्र देता है। वह किसी विशेष पहलू पर प्रकाश डालता है। नाटक में जीव की बहुलता, अनेकरूपता और घटना-बाहुल्य होता है, जबकि एकांकी एकरूपता। नाटक में कथानक जटिल होता है और छोटी सहाय घटनाओं को स्थान प्राप्त हो जाता है। एकांकी प्रायः संघर्ष स्थल प्रारंभ होता है और शीघ्र ही गति पकड़ कर चरम सीमा की ओर अग्रस होता है। एकांकी में वेग, संपन्न प्रवाह का महत्व है। एकांकी में संकलन क्रम का होना महत्वपूर्ण है। यही उसे जीवन का यथार्थवादी चित्र बना हैं। बड़े नाटक में संकलनक्रम का निर्वाह आवश्यक नहीं।

डा० रामचरण महेन्द्र से ही मिलता-जुलता मत डा० गणपति गुप्त का है। गुप्त जो के अनुसार एकांकी में एक अङ्क, एक घटना, ए कार्य और एक समस्या होती है, जबकि नाटक में कई अङ्कों, घटना कामों और समस्याओं का आयोजन हो सकता है। अतः स्थूल दृष्टि में एकांकी नाटक से बहुत लघु और सीमित होता है किन्तु फिर भी कि छोटे नाटक को एकांकी या बड़े एकांकी को छोटा नाटक कह सकते हैं नाटक से निकाल कर अलग किए हुए एक अङ्क को भी एकांकी न कहा जा सकता। एकांकी अपने-आप में पूर्ण होता है तथा उसकी महत्ता उसका व्यक्तित्व एवं उसकी चाल-ढाल नाटक से बहुत-कुछ भिन्न होती है। एकांकीकार अपने लक्ष्य की ओर सीधा दौड़ता है जबकि नाटककार धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। एकांकी शैली में संक्षिप्तता ए गतिशीलता होती हैं।

इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अपने मौलिक क्रम में एकांकी नाटक से भिन्न है। इस भेद को स्पष्ट करते हुए डा० रामगोपाल सिंह चौहान ने लिखा है कि –

१. एकांकी में एक अङ्क होता है जबकि नाटक में अनेक अङ्क होते हैं

२. एकांकी में एक ही घटना का वर्णन होता है जबकि नाटकों में एकाधिक कथा तथा एक या अनेक प्रासंङ्गिक कथाओं का वर्णन होता है।

३. एकांकी में पात्रों के क्रियाकलापों को इस रूप से सङ्गठित किया जाता है कि एक सीमित क्षेत्र में ही पात्रों के चारित्रिक तथा मानसिक घात-प्रतिघात तथा कथा प्रसङ्ग और पात्रों की मूल चारित्रिक विशेषताओं द्वारा कथा का मर्म स्पष्ट हो जाए।

४. एकांकी में अनेकांकी की भांति धीरे-धीरे कथा के आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा आदि के विकास की गुञ्जाइश नहीं होती। एकांकी में तो कथा आरंभ से ही एक आवेश के साथ आरंभ होती है और जिज्ञासा तथा विस्मय की आरोह—अवरोहपूर्ण गति के साथ चरमसीमा की ओर विकास करती है और चरमसीमा पर पहुंचकर जिज्ञासा और विस्मय पूंजीभूत होता है और कथा का आकस्मिक पटाक्षेप हो जाता है।

५.एकांकी की कथा चरमसीमा पर पहुँचकर फिर आगे नहीं बढ़ती। एकांकी की कथा में एक घनत्व होता है और नाटक की कथा में फैलाव।

६. एकांकी कम से कम दस मिनट और अधिक से अधिक एक घण्टे का होता है, जबकि नाटक की कथा कई घण्टों में समाप्त होती है। इसलिए नाटक की अपेक्षा एकांकी में कथा के गठन में शिक्षा, घटनाओं के क्रम में वेग, संवादों में अधिक चुस्ती और सांकेतिकता होती है। एकांकी के संवादों से एक साथ चरित्र तथा कथा का विकास और पात्रों तथा कथा से सम्बन्धित घटनाओं का संकेत और उद्घाटन भी होता है।

७. एकांकी की अपेक्षा अनेकांकी में चरित्र के अधिक उतार-चढ़ाव का अवसर रहता है। एकांकी में भी पात्रों के चरित्र का चढ़ाव-उतार तथा द्वन्द्व तो होता है, पर ऐसा जो पात्र के संपूर्ण जीवन को अपने परिवेश में नहीं घेरता। एकांकी में विचित्र चरित्र के आधार पर हम बहुधा किसी पात्र के सम्पूर्ण जीवन की चारित्रिक विशेषता का अनुमान नहीं लगा सकते।

डा० रामचरण महेन्द्र ने कथावस्तु, कथोपकथन, रंगमंच, पात्रों की

संख्या आदि की दृष्टि से एकांकी को नाटक से अलग बताया है। डॉ
महेन्द्र के अनुसार एकांकी का प्राण कथोपकथन है। नाटक में घटनाएं
की व्यंजना, विस्तृत चरित्र-चित्रण, विस्तृत कार्यव्यापार, अधिक संप
और चौड़े स्टेज की आवश्यकता है परन्तु एकांकी में मितव्ययता द्वारा
कार्य करने पड़ते हैं। नाटक में कथोपकथन लंबे, विवेचन प्रधान
स्वागत से परिपूर्ण हो सकते हैं किंतु एकांकी का कथोपकथन संक्षिप्त
मर्मस्पर्शी तथा चरित्र की विशेषताएं प्रकट करने वाला होता है।
की सहायता से कथानक का विकास तथा परिस्थितियों और वातावरण
का निर्माण होता है। एकांकी में स्वागत का स्थान नगण्य है। बड़े नाटकों
में पात्रों की संख्या यथेष्ट रहती है। मुख्य पात्रों की संख्या कम
ज़ाती है। बड़े नाटक और एकांकियों का शिल्प भिन्न है।

**प्रश्न १३ – हिंदी नाटक के उद्‌भव एवं विकास में भारतेंदु हरि
का योगदान स्पष्ट करें।**

उत्तर – भारतेंदुयुगीन सभी नाटककारों ने एकांकी लिखने
संस्कृत की शैली का अनुसरण किया है। इनके सामने संस्कृत के ना
साहित्य का आदर्श था। इनके (भारतेंदु युगीन एकांकीकारों) विषय त
शैली दोनों संस्कृत नाटकों के अनुवर्ती हैं। स्वयं इस युग के नेता भा
हरिश्चंद्र ने भी इन दोनों दृष्टियों का अनुवर्तन किया है। भारतेंदु ने
'धनंजय विजय', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नग
आदि एकांकी नाटकों की रचना की। इन नाटकों में भारतेंदु जी
यद्यपि दृश्य के स्थान पर अङ्क लिखा है किन्तु यदि अङ्कों को ह
दिया जाय और उनके स्थान पर दृश्य कर दिया जाय तो इनका
एकांकी जैसा बन जाता है। भारतेंदु के एकांकी पर बंगला नाटकों
फारसी रङ्गमंच का अच्छा प्रभाव है। इन नाटकों में विभिन्न रूढ़ि
रीति-रिवाजों, सामाजिक एवं राजनीतिक बुराइयों पर तीखा व्यंग्या
प्रहार हुआ है। भारतेंदु युगीन अन्य एकांकीकारों में श्रीनिवास दा
राधाचरण, गोस्वामी, प्रेमधन, बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र

आदि प्रमुख हैं। इन सभी लेखकों के एकांकी हमारे राष्ट्रीय आचरण की प्रारंभिक चेतना को प्रतिबिंबित करते हैं और हिंदी एकांकी के प्रारंभिक रूप कहे जा सकते हैं। इस युग का आरंभ सन् १८५७ में गोपाल चंद्र द्वारा रचित ब्रजभाषा में नहुष नाटक से होता है। भारतेंदु जी ने स्वयं विद्यासुन्दर का अनुवाद हिंदी में करके हिंदी नाट्य साहित्य को जन्म दिया। भारतेंदु युग में प्रणीत नाटक मुख्य रूप से तीन पक्षों को समाहित करते हैं। १– सामाजिक पक्ष एंव राजनीतिक पक्ष २– पौराणिक पक्ष, ३– प्रणय सम्बन्धी पक्ष। यहीं से नाटक में प्राचीन रुढ़ीवादी परम्पराओं का परित्याग किया गया एंव नाटक में नवीन धारा उद्‌भूत हुई। भारतेन्दुजी की मृत्यु के बाद नाटकों के विकास गतिक्रम में शिथिलता आ गयी।

प्रश्न १४– आधुनिक काल में प्रसादयुग पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

उत्तर – प्रसादयुग–सम्वत् १९७५ से सम्वत् २००० तक प्रसादयुग का समय माना जाता है। प्रसादयुग सभी दृष्टियों से हिन्दी साहित्य का परमोत्कर्ष काल माना जाता है। छायावाद और रहस्यवाद नामक दो महान् मौलिक काव्यधाराओं का इस युग में आरम्भ और विकास हुआ। द्विवेदी युग की नीरस और उपदेशात्मक इतिवृत्ति-प्रधान कविता की प्रतिक्रिया में छायावाद और रहस्यवाद का आविर्भाव होना स्वाभाविक था। छायावाद में सजीव प्रकृति तथा रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों को कलात्मक अभिव्यक्ति कर कवियों द्वारा अत्यन्त सुन्दर और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया । जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और डा० रामकुमार वर्मा इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं।

नाटक साहित्य का उद्‌भव और विकास – नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों का प्रमुख स्थान है। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु आदि इनके नाटकों में भाषा और

कला की प्रौढ़ता मिलती है। भारतीय इतिहास को आधार मानकर सु
अतीत की झलक दिखा वर्तमान के लिए आशाप्रद संदेश इन नाटकों
विशेषता है; साथ ही साथ प्राचीन और पश्चिमी नाट्य शैलियों का सु
समन्वय मिलता है। चरित्र चित्रण में अर्न्तमन की प्रधानता है। कवि
के कारण प्रसाद जी के अनेक सुंदर गीतों का समावेश इन नाटकों
पाया जाता है किंतु रंगमंच और अभिनय की दृष्टि से प्रसाद के ना
सर्वथा निर्दोष नहीं कहे जा सकते। यद्यपि हरिकृष्ण प्रेमी ने आगे चल
मुगलकालीन इतिहास पर आधारित कुछ नाटक लिखा किंतु प्रसाद
नाटकों की तुलना में वे टिक न सके। पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र
समस्या-मूलक नाटकों का प्रणयन किया। मिश्र जी के नाटक में 'रा
का मंदिर' और 'सिंदूर की होली' प्रसिद्ध है। अन्य नाटककारों में
गोविन्ददास, गोविन्दवल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट
नाम उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास साहित्य का उद्‌भव और विकास – उपन्यासों
यथार्थवाद का प्रारंभ मुशी प्रेमचंद ने प्रस्तुत किया। सेवासदन, नि
प्रेमाश्रम, गोदान, रंगभूमि, कर्मभूमि आदि इनके उपन्यासों में प्रथम
भारतीय समाज का यथार्थ चित्र देखने को मिलता है। राजनीतिक
सामाजिक समस्याओं को लेकर प्रेमचन्द्र ने आदर्शोन्मुख यथार्थ
उपन्यासों की रचना में उनकी लेखनी से ग्रामीण जीवन का सजीव
देखने को मिलता है। प्रेमचन्द्र द्वारा कहानी और उपन्यासों के
क्रांतिकारी परिवर्तन से हिंदी उपन्यास रोमांच और तिलस्मी जाल
निकलकर जीवन के क्षेत्र में पहुँच गया। जयशंकर प्रसाद ने कंकाल
तितली जैसे उत्कृष्ट उपन्यासों की रचना की। वृन्दावन लाल व
ऐतिहासिक उपन्यास कला में अपना विशिष्ट स्थान स्थापित कि
भगवती चरण वर्मा ने चित्रलेखा, कौशिक जी ने माँ और भिखारि
शैलेन्द्र कुमार ने, चरण, सुनीता, कल्याणी और त्यागपत्र ना
सुंदर उपन्यासों की रचना की। आगे चलकर यशपाल ने

समाजवादी अज्ञेय तथा अश्क ने सामाजिक उपन्यासों की रचना की।

निबंध-साहित्य – हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार और सर्वोच्च आलोचक पं० रामचंद्र शुक्ल भी इसी युग में पैदा हुए। शुक्ल जी के विचारात्मक निबंधों का संग्रह चिंतामणि है, जिसमें स्वयं मनोभावों तथा विचारणीय साहित्य सिद्धांतों पर उनके गंभीर विचार प्रकट हुए हैं। आलोचना के क्षेत्र में तो शुक्ल जी ने महान क्रांति उपस्थित कर दी। जायसी, तुलसी और सूरदास पर लिखी उनकी आलोचनाएं अपना स्थान रखती हैं। हिंदी साहित्य का इतिहास शुक्ल जी की एक अद्वितीय रचना है। मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक आधार पर व्याख्यात्मक आलोचना का मार्ग शुक्ल जी ने प्रशस्त किया। अन्य निबंधकारों और आलोचकों में डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रसाद द्विवेदी, पं० नन्द दुलारे वाजपेयी और डा० नगेन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

प्रश्न १५ – नाटक के उद्भव और विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर – नाटक – नाटक की उत्पत्ति और उसके विकास के सम्बंध में विद्वानों ने अनेक खोजें की हैं। प्रायः सभी इस बात से सहमत हैं कि आरंभिक नाटक आदि मनुष्य की प्रसन्नता और आमोद का सूचक था। इस प्रकार मानव के आंतरिक और बाह्य आनन्दातिरेक की अभिव्यक्ति और उसकी अनुभूति ही नाटक की उत्पत्ति का मूल आधार है। क्रमशः विशेष अवसरों पर देवी देवताओं की प्रसन्नता हेतु वर्णित नवीन अन्नोत्पादन के अवसर पर व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से आनन्दोल्लास की अभिव्यक्ति में क्रमशः नृत्य, गान और वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग होने लगा और आगे चलकर अतीत की किसी असाधारण

घटना या मार्मिक घटना को लेकर उसका भी अनुकरण प्रारंभ हुआ और बाद में नृत्य और गान के साथ घटनाओं का योग होने लगा। इस प्रकार क्रमशः नाटक का एक स्थिर स्वरूप बनने लगा। ज्यों-ज्यों सामाजिकता का विकास हुआ और कला संबंधी अभिरुचि विकसित हुई, त्यों-त्यों नाटक के विकास में कलात्मकता की भी प्रतिष्ठा हुई तथा धीरे-धीरे नाटक के विभिन्न अंगों का विकास और उसमें नृत्य, गान, वा कथानक, चरित्र और संवादों में संतुलन की यह कलात्मक प्रेरणा आगे चलकर नाटकों के अनेक भेद या प्रकार बनाए। आगे चलकर सर्वप्रथत भारतीय नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने नाटक मानसिक तृप्ति का आधार 'रस' की स्थापना की और रस नाटक उद्देश्य निर्धारित किया गया तथा नाटक की आत्मा रस मानी गई।

रंगमंच की स्थापना से नाटक का कलात्मक वैभव अपनी उँचाई पर पहुंच गया। नाटक में वास्तविक जीवन की घटना नहीं रह बल्कि उसकी कल्पनात्मक सत्ता ही रहती है। यह बात रंगमंच निर्माण से सिद्ध हो गई।

उपन्यास और कहानी

प्रश्न १६ – आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में उपन्यास और कहानी के उद्गम और विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर – निरंतर कार्य में मानव के सभी शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कार्य आते हैं। मानव अपने जन्मकाल से ही श्रम-परिहार के साधनों की खोज में लगा रहा। श्रम-परिहार और मनोरंजन के अनेक साधनों में कथा कहानी का श्रेष्ठ भी एक साधन रहा है। मानव के आदिकाल से कथा-कहानी की यह धारा अविरल गति से चली आ रही है। भले ही इसकी गति कभी तेज, कभी मंद, कभी गहरी, कभी उथली और कभी विविध-मुखी बनी रही। जीवन-मूल्यों के उतार-चढ़ाव के साथ भी परिवर्तन होना स्वाभाविक रहा है। किन्तु इसका मूल उद्देश्य मनोरंजन औत्सुक्य या जिज्ञासा प्रारंभ से आज तक विद्यमान है और अपने उक्त दो मूल की न्यूनाधिक पर ही कथा साहित्य का मूल्यांकन होता है।

स्कन्दगुप्त समीक्षा

क्र० सं०	मूल पुस्तक के पाठ	पृष्ठ संख्या
१.	हिन्दी नाट्य साहित्य को प्रसाद जी की देन, स्पष्ट कीजिए।	१
२.	प्रसाद जी के नाटकों के कथोपकथनों की समीक्षा कीजिए।	३
३.	शैली की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटकों की आलोचना कीजिए।	५
४.	'स्कन्दगुप्त का कथानक और उसकी विशिष्टताएँ' शीर्षक पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।	६
५.	प्रसाद का स्कन्दगुप्त एक सफल ऐतिहासिक नाटक है, इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।	८
६.	पात्र चरित्र-चित्रण की दृष्टि से स्कन्दगुप्त का मूल्यांकन कीजिए।	१०
७.	'प्रसाद के नारी पात्रों के सृजन में उनकी प्रतिभा का सर्वाधिक उन्मेष दीख पड़ता है।' स्कन्दगुप्त के आधार पर स्पष्ट करें।	१३
८.	स्पष्ट कीजिए कि 'देवसेना का चरित्र' प्रसाद जी की एक अलौकिक भेद है।	१५
९.	स्कन्दगुप्त नाटक के आधार पर बन्धुवर्मा का चरित्र-चित्रण कीजिए।	१६
१०.	स्कन्दगुप्त नाटक के आधार पर पर्णदत्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।	१८
११.	स्कन्दगुप्त के नाटक के आधार पर विजया का चरित्र-चित्रण कीजिए।	२१
१२.	स्पष्ट कीजिए कि जयमाला ने भारतीय क्षत्रिय नारी की गौरवपूर्ण झांकी अपने आचरण व चरित्र द्वारा प्रस्तुत की है।	२१

प्रमुख स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

क्र० सं०	मूल पुस्तक के पाठ	पृष्ठ संख्या
१.	अधिकार सुख..........अच्छे हैं।	२३
२.	राष्ट्रनीति समझने..........लगे हैं।	२३
३.	आंधी आने के.......साम्राज्य को नहीं है।	२४
४.	यदि यह..........बना देना।	२५
५.	न छेड़ना..........सुधार कोकिल।	२५
६.	मनुष्य पशु नहीं..........बच जाता है।	२६
७.	संसृति के..........उठा जाता है।	२७
८.	अमृत के सरोवर..........टूट गया।	२८
९.	यदि यह..........आहार मिले।	२८
१०.	इस गतिशील जगत..........चेतना रहस्य है।	२९
११.	यह भी रहस्य..........से एक होंगे।	३०
१२.	सूची भेद्य..........आलिंगन।	३१
१३.	भरा नैनों..........मन के रूप।	३१
१४.	पवित्रा की..........जा सकती।	३२
१५.	विजया का..........रहस्य है।	३३
१६.	घने प्रेम तरु..........प्रेम तरु तले॥	३३
१७.	कृतघ्न..........नहीं रह सकता।	३४
१८.	बौद्धों का..........सतरंग है।	३४
१९.	कौन कहता है..........विश्व हान॥	३५

स्कन्दगुप्त समीक्षा

प्रश्न १—हिन्दी नाट्य-साहित्य को प्रसादजी की देन स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—साधारणतः प्रसाद का नाटक रचना काल सन् १९१० से आरम्भ होता है, परन्तु उनकी नाट्यकला का वैज्ञानिक अनुशीलन करने के पूर्व उनकी पूर्ववर्ती हिन्दी नाट्य परम्परा से परिचित होना भी आवश्यक है। यह तो निर्विवाद सत्य ही है कि हिन्दी नाट्य-साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे और उन्होंने ही हिन्दी नाटकों का श्रीगणेश किया है, लेकिन जैसा कि श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है कि 'भारतेन्दु के नाटक व्यापार प्रधान न होकर भावना प्रधान और काव्यात्मक रहे हैं। उनमें चरित्र की रूपरेखा स्वतन्त्र नहीं, रस की अनुवर्तिनी रही है। इस विशेष अर्थ में भारतेन्दु के नाटक 'रसात्मक' या प्रभावाभिव्यञ्जक ही कहे जायेंगे! फिर भी उनमें उच्च-कोटि की नाटकीय प्रतिभा और क्षमता थो, जिसके कारण वे प्रभाव-शालिनी वस्तु योजना और आकर्षक परिस्थिति निर्माण कर सके हैं। इस कारण उनके नाटकों में आज भी अभिनेता का सामर्थ्य बना हुआ है। इसके पश्चात् द्विवेदी युग के नाटककारों में प्रेम-कथा तक को लेकर नाट्य रचना चलने लगी। नाटक दो पात्रों की प्रेमलीला का रंगीन, किन्तु गतिहीन आख्यान बन गया। दूसरी ओर पारसी कम्पनियाँ असाहित्यिक और असांस्कृतिक नाटकों का निर्माण एवं अभिनय करने में लगी हुई थीं। इस छाये हुए सन्नाटे को दूर कर पहले पहल कुछ घटना प्रधान ऐतिहासिक नाटक हिन्दी में लिखे गये। ये नाटक प्राचीन युग के उत्कर्ष व्यञ्जक होने के कारण भाव प्रधान भी थे। चरित्र न सही, कुछ

साकार और सजीव व्यक्तियों का आगमन नाटक साहित्य में होने लगा। कुछ अन्तर्द्वन्द्व या भावुकता प्रधान बंगला नाटकों का भी हिन्दी अनुवाद हुआ। इसी समय प्रसादजी ने नाट्यक्षेत्र में प्रवेश कर नाटक को नये चरित्र, नयी घटनायें, नया ऐतिहासिक देश-काल, नया आलाह-संलाप संक्षेप में नया समारम्भ दिया। हिन्दी नाटकों में नया युग प्रवर्तन होने लगा।'

इस प्रकार प्रसादजी युगप्रवर्तक नाटककार हैं और उन्होंने प्राचीनता का ध्यान रखते हुए अंग्रेजी व बंगला साहित्य से प्रभावित हो नूतन मार्ग भी ग्रहण किया। अतएव उनकी नाट्यशैली प्राचीन और आधुनिक नाट्यशैली की सम्मिलित भूमि है तथा उन्हें हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक नाटककार भी कहा जाता है।

अपने साहित्यिक रचनाकाल के ३५ वर्ष की सीमित अवधि में प्रसाद ने १४ नाटक प्रस्तुत किये और दो का संयोजन किया, जिनकी तालिका इस प्रकार दी जा सकती है—

१. सज्जन (सन् १९१०–११), २. प्रायश्चित्त (जनवरी, सन् १९१५), ३. कल्याणी परिणय (सन् १९१२), ४. करुणालय (फरवरी, सन् १९१२), ५. यशोधर्मदेव (अप्रकाशित), ६. राज्यश्री (जनवरी, सन् १९१५), ७. विशाख (सन् १९२१), ८. अजातशत्रु (सन् १९२२), ९. जनमेजय का नागयज्ञ (सन् १९३६), १०. कामना (सन् १९२३–२४), ११. स्कन्दगुप्त (सन् १९२८), १२. चन्द्रगुप्त (सन् १९३१), १३. एक घूंट (सन् १९३०), १४. ध्रुवस्वामिनी (सन् १९३३), १५. अग्निमित्र (अपूर्ण), १६. इन्द्र (संयोजन मात्र)।

उक्त तालिका में उल्लिखित "यशोधर्मदेव" नाटक विशाख से पूर्व ही लिखा गया था और इसका आकार भी विशद था तथा इसके प्रकाशित किये जाने की सूचना भी विशाख की भूमिका में दी गयी थी, पर

यह प्रकाश में आने के पूर्व ही नष्ट कर दिया गया। कहा जाता है कि जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर इस नाटक की कथा आधारित थी, उसकी ऐतिहासिकता कई विद्वानों द्वारा अमान्य ठहरायी गयी और इस दिशा में पुष्ट प्रमाण भी प्रस्तुत किये गये, अतः अनैतिहासिक नाटकों को प्रकाश में लाना उचित न समझ उसे नष्ट कर दिया गया।

इसी प्रकार अग्निमित्र का लेखन-कार्य इरावती नामक उपन्यास से पूर्व ही आरम्भ हो चुका था. और इसकी कथावस्तु ही इरावती की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। अग्निमित्र के दो-तीन दृश्य लिखे गये; पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद से इस कथानक पर नाटक न लिखकर उपन्यास लिखने का परामर्श दिया, अतः इरावती का लेखन-कार्य प्रारम्भ हो गया और अग्निमित्र अपूर्ण ही रह गया। इस नाटक का जो अंश लिखा गया था, वह प्रसाद के देहावसान के उपरान्त वाराणसी (काशी) के दैनिक 'आज' के ३१ अक्तूबर, सन् १९४४ के अंक में प्रकाशित हुआ।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में प्रसादजी "इन्द्र" नामक नाटक लिखने का विचार भी कर रहे थे तथा अपने इस नाटक में वह त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की हत्या आदि पर ऐतिहासिक ढंग से विचार करना चाहते थे, लेकिन वह इसे साकार रूप न दे सके।

प्रश्न २—प्रसादजी के नाटकों के कथोपकथनों की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—प्रसाद के नाटकीय संवाद व्यवहारानुकूल, भाव व्यञ्जक, संघर्षमय और मनोवैज्ञानिक है तथा उनमें एक प्रकार की अनूठी सजीवता-सी विद्यमान है। इसी प्रकार पात्रों के अनुरूप ही उनका वार्तालाप भी है और संवादों के माध्यम से पात्रों का चरित्र भी स्पष्ट हो सका है, उदाहरणार्थ—

"मालविका—सम्राट अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने है।"

चन्द्रगुप्त—संघर्ष ! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका ? आशा और निराशा का, कुछ भावों का अभावों से द्वन्द्व ! कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में एक रिक्त चिह्न लगा देता है।

मनोवेगानुसार कथोपकथन में पात्रों की भाषा में परिवर्तन भी होता रहा है और यहाँ क्रोध का जितना सजीव चित्रण वार्तालाप द्वारा हुआ है 'रक्त में पिपासु ! क्रूरकर्म्मा मनुष्य ! कृतघ्नता कीच का कीड़ा ! नर्क की दुर्गन्ध ! तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूंगी।' प्रसाद के नाटकों में स्वगत पद्यात्मक संवादों की भी अधिकता है और कहीं-कहीं स्वगतों की अधिकता के कारण अस्वाभाविकता भी आ गयी है।

देश-काल और वातावरण में चित्रण की ओर भी प्रसाद का ध्यान गया है और उन्होंने व्यक्त व प्रच्छन्न दो ही रूपों में तत्कालीन अवस्था की झाँकी प्रस्तुत की है। जिस काल से व्यक्तियों का स्वरूप अंकित किया है उनमें उस काल की छाप विद्यमान है और प्रायः सभी नाटकों में तत्कालीन यथार्थ राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक स्थिति का भी आभास दिया गया है। साथ ही प्रसाद के नाटक सोद्देश्य हैं और संस्कृति प्रधान नाटकों की रचना करते हुए भी उनकी दृष्टि जीवन की विभिन्न समस्याओं पर गयी है तथा ध्रुवस्वामिनी ऐतिहासिक, राष्ट्रीय व सांस्कृतिक नाटक होते हुए भी समस्या नाटक है। इसमें प्रसादजी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो मनुष्य इतना पतित हो कि अपनी पत्नी को भी शकराज की भेंट कर दे, वह पति कहलाने का अधिकार नहीं रखता और राजा यदि अयोग्य हो तो उसे राजसिंहासन से उतार देना चाहिए।

प्रसाद के नाटकों में आधुनिक युग के भी उज्ज्वल चित्र विद्यमान हैं और ध्रुवस्वामिनी तो सम्पूर्ण रूप में वर्तमान युग का ही चित्र है तथा अजातशत्रु में बिम्बसार का अजातशत्रु की अयोग्यता में राज्यभार न

देने का बहाना करना ब्रिटिश साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का द्योतक है। चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त में भी आधुनिक की झाँकी है तथा अलका का अलख जगाना वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों के भाग को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार 'आक्रमणकारी ब्राह्मण और बौद्ध का भेद न रखेंगे' में हिन्दू-मुस्लिम एकता की एक झलक है तथा 'मालव और मगध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह आत्म-सम्मान मिलेगा' में प्रान्तीयता की झाँकी है। स्कन्दगुप्त तो राष्ट्रीय भारत का प्रतिरूप है और 'मेरा देश मालव नहीं, तक्षशिला भी है, समस्त आर्यावर्त है' में अखण्ड भारत की भावना है तथा 'अन्न पर अधिकार है भूखों का और धन पर अधिकार है देश का' में समाजवादी विचारधारा की झलक है। इसी प्रकार स्कन्दगुप्त में चैत्य के पास जो बौद्ध-ब्राह्मणों का संघर्ष है, वह हिन्दू-मुस्लिम का रूप प्रस्तुत करता है।

प्रश्न ३—शैली की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों की आलोचना कीजिये

उत्तर—शैली की दृष्टि से विचार करने पर भी प्रसाद के नाटक सफल ही कहे जायेंगे और जैसा कि डॉ० रामचन्द्र तिवारी का कहना है "प्रसाद ने न तो प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र से अपने को अलग किया और न पाश्चात्य नाट्य-विधियों का अन्धानुसरण। दोनों का उचित सामंजस्य उनकी नाट्यकला की प्रमुख विशेषता है। पूर्वरंग, प्रस्तावना, नान्दी पाठ, भरत वाक्य आदि का त्याग (प्रारम्भिक नाटक इसके अपवाद हैं। अन्तर्द्वन्द्व और बहिर्द्वन्द्व का प्राधान्य, चमत्कारपूर्ण प्रसंगों की अवतारणा, वस्तु-विन्यास का प्राधान्य, स्थिति परिवर्तन उपस्थित करने के लिए करुणा और भय का सम्मिलित चित्रण (अजात-शत्रु में पद्मावती को मारने के लिए उदयन का उद्यत होना, 'स्कन्द-गुप्त' में देवसेना का प्रपञ्चबुद्धि के जाल में फँसना) इत्यादि। इन सबका उचित ग्रहण पाश्चात्य शैली के आधार पर किया गया है।

अजातशत्रु में तो कार्य-व्यापार का विकास भी पाश्चात्य नियमों के ही आधार पर हुआ है। साथ ही नाटकों में 'रस' की प्रधानता, कार्य की अवस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों तथा सन्धियों की उपस्थिति (स्कन्दगुप्त तथा चन्द्रगुप्त में तीनों स्पष्ट लक्षित होती हैं), नायकों का उदात्त व्यक्तित्व, प्रख्यात कथानक आधिकारिक और प्रासंगिक कथानकों का उचित सम्बन्ध, यह सब भारतीय आदर्शों के आधार पर हुआ है। स्वगत कथन का बाहुल्य, रंगमंच की रचना के निर्देश का अभाव, गीतों का बाहुल्य, हास्य का स्वरूप, इन सबकी उपस्थिति भी भारतीय परम्परा के आधार पर ही की गयी है। इस प्रकार प्रसाद ने अपने नाटकों में दोनों का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया है।"

प्रश्न ४—'स्कन्दगुप्त का कथानक और उसकी विशिष्टताएँ' शीर्षक पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर—स्कन्दगुप्त प्रसाद का सर्वोत्तम नाटक कहा जाता है और श्री नन्ददुलारे बाजपेयी के कथनानुसार "इस नाटक की कला-क्षमता उनके अन्य नाटकों की अपेक्षा ऊँची है। प्रसादजी ने इसमें कथानक की ऐतिहासिक और राजनीतिक घटनाओं का योग पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन घटनाओं से करना चाहा है। इसलिए नाटक के कथानक में इन दोनों घटना समूहों को पारस्परिक संघात मिलता है। सभी पात्रों का एक पक्ष भारतीय राजनीति के परिवर्तन में देखा जाता है और दूसरा व्यक्तिगत पार्श्व भूमि पर। एक तरह से सारा वस्तु-विन्यास दो स्तरों पर चलता है, जिससे नाटक में अधिक स्वाभाविकता आयी है।"

कथावस्तु—गुप्त साम्राज्य के सम्राट कुमारगुप्त कुसुमपुरमें विलासी जीवन व्यतीत करते हैं और उन्हें मदिरा और नर्तकियों से ही अवकाश नहीं है। वह अपनी छोटी रानी अनन्तदेवी के वश में हैं और अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुप्त को राज्य दिलाना चाहती है। बड़ी रानी देवकी असहाय है और उसका पुत्र स्कन्दगुप्त होते हुए भी अपने दायित्व के

पद के प्रति उदासीन-सा है। उसे साम्राज्य का अन्धकारपूर्ण भविष्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है और वह गुप्तवंश के उत्तराधिकार के नियमों की अव्यवस्था देखकर चिन्तित भी है, क्योंकि उसे यह विश्वास नहीं था कि वही राज्य का उत्तराधिकारी भी होगा।

वस्तु विन्यास—हमारे यहाँ प्राचीन आचार्यों ने आधिकारिक और प्रासंगिक नामक वस्तु के दो प्रमुख भेद माने हैं। आधिकारिक कथा ही प्रधान या मूल अंग है और उसका कथा के प्रमुख पात्रों से सम्बन्ध रहता है तथा उसी के पात्र फलप्राप्ति के अधिकारी होते हैं। इनके विपरीत प्रसंगवश आई कथा को प्रासंगिक कहा जाता है और वह मुख्य कथा के विकास व सौन्दर्यवर्द्धन में सहायक होती है। उदाहरणार्थ रामायण में राम की कथा आधिकारिक कथा और सुग्रीव की कथा प्रासंगिक है, क्योंकि वह मूल कथा के विकास में सहायक होती है।

इस दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि स्कन्दगुप्त अपने पूर्ववर्ती नाटक अजातशत्रु से बहुत अधिक सफल है, क्योंकि अजातशत्रु तो कई कथानकों का नाटक है और उसमें छह कथासूत्रों को एक कथानक में गूँथने का प्रयास किया गया है। इसके विपरीत स्कन्दगुप्त में कथा की एक ही अविच्छिन्न धारा सम्पूर्ण नाटक में प्रवाहित है और उनमें अन्य कथासूत्र नहीं हैं। स्कन्द का देवसेना से प्रेम वाला प्रकरण विजया का स्कन्द के प्रति आकर्षण और बाली के प्रश्न को लेकर बौद्ध व ब्राह्मणों का विवाद आदि प्रसंग उपकुथानक नहीं कहे जा सकते, अतः हम यही देखते हैं कि स्कन्दगुप्त की कथा सुसंगठित और शृङ्खलाबद्ध है। चूँकि प्रसाद के अन्य ऐतिहासिक नाटकों में उद्देश्य और कथा की यह शृङ्खला नहीं मिलती, अतः वह स्कन्दगुप्त की भाँति प्रभावोत्पादक नहीं प्रतीत होते।

कार्यावस्थाएँ—वस्तुतः कथावस्तु के विकास में कार्य की विभिन्न अवस्थाएं सहायक होती हैं, पर इन अवस्थाओं के सम्बन्ध में पाश्चात्य व

भारतीय दोनों ही नाट्यशास्त्रों में पृथक्-पृथक् मत व्यक्त किये गये हैं। जहाँ कि पाश्चात्य आचार्यों ने प्रारम्भ, विकास, चरम-सीमा, नियति या उतार और समाप्ति नामक कथानक की पाँच भूमिकाएँ निर्धारित की हैं। यहाँ भारतीय आचार्यों ने कथा का प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रदायाशा, नियताप्ति और फलागम नामक पाँच अवस्थाएँ मानी हैं। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा में अत्यन्त सूक्ष्म मतभेद है तथा दोनों में अन्तर केवल संघर्ष के सम्बन्ध में है, क्योंकि हमारे यहाँ संघर्ष को अधिक महत्त्व नहीं प्रदान किया गया, जब कि पाश्चात्य विचारक संघर्ष को नाटकों की आत्मा मानते हैं तथा उनकी दृष्टि में संघर्ष के अभाव में नाटकीय कथावस्तु सर्वथा अनुपयुक्त व प्राणहीन जान पड़ती है।

उक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए जब हम 'स्कन्दगुप्त' की कथा पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि उसमें भारतीय और पाश्चात्य नाट्यविधियों का सुन्दर समन्वय हुआ है तथा दोनों के ही विकास तत्त्व स्पष्ट दीख पड़ते हैं।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा संगठन की दृष्टि से स्कन्दगुप्त एक सफल नाटक है।

प्रश्न ९—'प्रसाद का स्कन्दगुप्त सफल ऐतिहासिक नाटक है।' इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

उत्तर—"स्कन्दगुप्त" प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक कहा जाता है और अधिकांश समीक्षक उसे ऐतिहासिक मानते हैं, परन्तु साथ ही उसकी अनैतिहासिकता सिद्ध करने वाले कुछ विचारक भी हैं। इन विद्वानों का कहना है कि 'स्कन्दगुप्त' का ऐतिहासिक आधार प्रामाणिक नहीं है और श्री परमेश्वरीलाल गुप्त के शब्दों में 'स्कन्दगुप्त' के राज्य-काल के सम्बन्ध में ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं है, जिससे इतिहास का

स्वरूप किसी प्रकार स्थिर आधार पर खड़ा हो सके। अतः प्रसादजी को अपने इस नाटक में कथावस्तु के लिए कल्पना करने का पूरा अवसर मिला है। जिस समय प्रसादजी ने प्रस्तुत नाटक की रचना की थी, उस समय उनके सामने जो मान्यताएँ थीं, उनको उन्होंने ग्रहण किया है और उसी के आधार पर कल्पना के सहारे अपनी कथावस्तु को खड़ा किया है। किन्तु इन दिनों जो नयी ऐतिहासिक सामग्री आयी है, उससे तत्कालीन अनेक मान्यताओं के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया है और उनको मानना कठिन ही नहीं, असम्भव जान पड़ता है। प्रसादजी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या अपने ढंग पर करते अवश्य थे, पर वे ऐतिहासिक तत्त्वों के विरुद्ध नहीं जाते थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि जिस कथानक के आधारपर 'यशोधर्मदेव' नाटक लिखा है, उसका आधार अनैतिहासिक है तो उन्होंने उसे नष्ट कर दिया और उसे प्रकाश में नहीं आने दिया। अतः बहुत सम्भव है कि प्रसादजी यदि आज जीवित होते तो वे अपने इस नाटक को नष्ट कर देते; अन्यथा नयी शोध के आधार पर कथानक को कोई नया रूप देते और उनके अनुसार नाटक प्रस्तुत करते। इस प्रकार स्कन्दगुप्त की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में यहाँ विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय

जैसा कि स्वयं प्रसादजी ने "स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य" के प्रथम संस्करण के परिशिष्ट में लिखा है—पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि जहाँ तक सम्भव हो सका है, न होने दी गयी है। फिर भी कल्पना का अवलम्बन लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परम्परा ठीक करने के लिए। इस प्रकार प्रसाद के नाटक में कथावस्तु को सुसंम्बद्ध रखने के लिए कुछ कल्पित घटनाएँ और पात्र भी जोड़े हैं तथा इनके उपयोग में नाटक का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया है।

वस्तुतः नाटककार या उपन्यासकार अपनी कल्पना का प्रयो करने का एक अधिकार रखता है और वह कथावस्तु पर ध्यान देते हु उपयुक्त कल्पनाएँ भी कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं प्रसाद को इतिहास का गहन अध्ययन था, पर वे इतिहासकार अपेक्षा साहित्यकार अधिक थे। अतः अपनी साहित्यिक परिधि उद्देश्य पूर्ति की दृष्टि से कल्पना का अवलम्बन ऐतिहासिक घटनाओं परिवर्तन परिवर्द्धन भी कर देते थे। श्री शिवप्रसाद सिंह ने कहा भी कि 'इतिहास यदि उनकी स्थापनाओं से सामंजस्य रखता है तो वे उस अभ्यर्थन करते हैं। यदि ऐतिहासिक मान्यताएँ उनके पक्ष के विरोध जाती हैं तो वे उनका खण्डन करने के लिए इतिहास का शरण लेते और यदि खण्डन नहीं कर पाते तो उन्हें निराधार कहने में वे भी संको का अनुभव नहीं करते। एक बात का प्रसाद अवश्य हमेशा ध्यान रख हैं कि उनकी सुनिश्चित मान्यतायें किसी न किसी प्रकार का प्रश्रय सकें। अपनी मान्यताओं के प्रकार के लिए नाटकों से ज्याद सुविधा और दूसरी काव्यविधा नहीं, तटस्थ और स्थित-प्रज्ञ रहकर वे अप पात्रों के माध्यम से अपनी विचारधाराओं का बलपूर्वक प्रचार कर स जो उन्हें अभीष्ट था। इस प्रकार अपने सांस्कृतिक या ऐतिहा नाटकों में प्रसाद ने स्वोपलब्ध सत्य को अभिव्यक्ति दी। इसलिए स्क गुप्त में भी प्रसाद ने कल्पना और इतिहास का सुन्दर समन्वय प्रस्तु किया है।

प्रश्न ६—पात्र चरित्र-चित्रण की दृष्टि से स्कन्दगुप्त का मूल्यां कीजिये।

उत्तर ('स्कन्दगुप्त' के पात्र और उनका वर्गीकरण)—पात्र औ चरित्र-चित्रण की दृष्टि से जब हम स्कन्दगुप्त का मूल्यांकन करते हैं हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस ओर आकृष्ट होता है कि स्कन्दगुप्त ऐति हासिक नाटक है और जैसा कि डॉ॰ रामअवध द्विवेदी का कहना है

ऐतिहासिक नाटकों में चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कुछ विशेष सुविधायें तथा सीमायें होती हैं। प्रमुख पात्र इतिहास के व्यक्ति होते हैं और उनके स्वरूप से प्रायः सभी लोग कुछ न कुछ पूर्व से ही अवगत रहते हैं, अतः लेखक की मौलिकता केवल इस बात में दिखाई पड़ती है कि वह इन पात्रों को प्रस्तुत करते हुए कुछ नवीन प्रवृत्तियों तथा मानसिक अवस्थाओंका समावेश इस प्रकार करता है कि साधारणीकरण के अभीष्ट की सिद्धि होती है। इन्हीं मानवीय गुणों के कारण दर्शक और नाटक के पात्रों में तादात्म्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ चाणक्य के चरित्र में प्रसाद ने सुवासिनी के प्रति स्नेहाकर्षण का समावेश करके उसमें एक ऐसी मानवीयता विशेष सन्निविष्ट कर दी है, जिससे वह सर्वसाधारण के लिए आकर्षक बन गया है। इस प्रकार के सूक्ष्म परिवर्तन के अभाव में पात्र केवल इतिहास के पुतले मात्र रह जाते हैं। दूसरी ओर यदि नाटककार इतिहास में अंकित पात्रों और उनके चरित्र को आमूल बदल देता है, तब उसपर अज्ञान का दोष सहज ही लगाया जा सकता है। इसी मानदण्ड से प्रसाद के नाटकों के पत्रों की परीक्षा होनी चाहिये। प्रमुख पात्र प्रायः सभी ऐतिहासिक महापुरुष हैं और उनके रूप खड़ा करने में लेखक को यथोचित सफलता मिली है।

भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का समन्वय—स्कन्दगुप्त की पात्र-योजना में एक ओर तो साधारण किरण का सिद्धान्त लागू होता है और दूसरी ओर व्यक्तिवैचित्र्य वाला सिद्धान्त भी पाया जाता है। अतः प्रायः प्रत्येक पात्र के हृदय में द्वन्द्व का तूफान उठता रहता है और यही द्वन्द्व नाटक में चारित्रिक विकास में सहायक रहता है। प्रो० राजेश्वर सहगल ने कहा भी है—'अन्तर्द्वन्द्व और चरित्रों के विकास के कारण ही स्कन्द के चरित्र बहुत ही स्वाभाविक हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि नाटक में चरित्रों की संख्या अधिक है, लेकिन नाटक विस्तृत होने के कारण प्रत्येक मुख्य चरित्र के आन्तरिक द्वन्द्व और विकास की ओर

नाटककार का ध्यान जाता रहा है। नाटक के मुख्य चरित्रों तक ही नाटककार का यह मनोवैज्ञानिक चित्रण सीमित रहा हो, यह बात भी नहीं है। उदाहरण के लिए हूणों के आक्रमण से दुःखी स्त्री-पुरुषों की यह दयनीय दशा देखिये। दुष्ट सेनापति की आज्ञा से बालकों को जलाया जाने वाला है। स्त्रियों के कोमल शरीर पर जलते हुए लोहों के दाग लगने वाले हैं। भला ऐसी दारुण विपत्ति में भगवान् के सिवाय और कौन सहायक हो सकता है? भगवान् तक अपनी करुण पुकार पहुँचाने के लिए उनके हृदय में पीड़ित नागरिकों के प्रति दया उत्पन्न करने के लिए दुःखभरी आवाज ही काम में आ सकती है। नागरिकों के हृदय का दुःख उछल पड़ता है, उनके हृदय की करुण भावना साकार ही व्यक्त होने के लिए स्वाभाविक रूप से कविता का ही आश्रय लेगी। गद्य में तो उसकी तीव्रता ही विलीन हो जायेगी, अतएव—

स्त्रियाँ—हे नाथ,

हमारे निर्बलों के बल कहाँ हो,
हमारे दीन के सम्बल कहाँ हो।

पुरुष—नहीं तो नाम ही बस नाम है क्या,
सुना केवल यहाँ हो या वहाँ हो।

स्त्रियाँ—पुकारा जब किसी ने तब सुना था,
भला विश्वास यह हमको कहाँ हो।

प्रार्थना स्वाभाविक ही है, परन्तु स्त्री-पुरुषों की प्रार्थनाओं में भिन्नता है। स्त्रियों की निर्बलता आश्रय करने के लिए ही है, लेकिन पुरुषों की दयनीयता अपेक्षित नहीं। वह संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। संसार में अपने को सबसे अधिक प्रभावशाली समझने का उसे अभ्यास सा हो गया है, अतएव स्त्रियों ने पुकारा—

हमारे निर्बलों के बल कहाँ हो,
हमारे दीन के सम्बल कहाँ हो।

लेकिन जब भगवान् न आये तो पुरुष भगवान् के अस्तित्व पर ही हस्तक्षेप करने लगे—

> नहीं हो नाम ही बस नाम है क्या,
> सुना केवल यहाँ हों या वहाँ हो।

कितनी छोटी-सी बात है, लेकिन मनोविज्ञान ने स्त्रियों से ऐसी बातें कराने का साहस न किया होता। भगवान् की प्रार्थना प्रार्थना ही है, लेकिन प्रार्थना हृदय की उस भावुकता की अभिव्यक्ति है, जो स्वयं मनुष्य के जीवन पर—उसके चरित्र पर अवलम्बित रहती है।

मनोवैज्ञानिकता—साथ ही प्रसाद ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता पर भी ध्यान दिया है और पात्रों का चरित्राङ्कन करते समय उनके आदर्श आध्यात्मिक व आधिभौतिक दोनों प्रकार के हैं। इसलिए एक ओर तो उन्होंने करुणा, प्रेम, परोपकार, क्षमा, अहिंसा, उदारता आदि विविध मानवीय आदर्शों का चित्रण किया है और दूसरी ओर जीवन-व्यापारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति करते समय वह द्वेष, घृणा, छल, ईर्ष्या आदि का भी चित्रण करते हैं।

प्रश्न ७—'प्रसाद के नारी पात्रों के सृजन में उनकी प्रतिभा का सर्वाधिक उन्मेष दीख पड़ता है।' स्कन्दगुप्त के आधार पर स्पष्ट करें।

उत्तर (नारी-चित्रण)—वस्तुतः प्रसाद को नारी-जीवन के चरित्राङ्कन में विशेष सफलता प्राप्त हुई और श्री हरप्रसाद शास्त्री के शब्दों में 'यों तो प्रसाद ने अपने सभी पात्रों का सवाक् और सरूप चित्रण किया है, किन्तु नारी चित्राङ्कन में उन्हें सर्वाधिक सफलता मिली है। उनकी नारी भावुक भी है, स्नेह करना भी जानती है और उस स्नेह के लिए बड़ा से बड़ा त्याग भी करना जानती है। उसका प्रेम विषय-वासनाओं की उद्दीप्ति तक ही सीमित नहीं रहता, वरन् त्याग और बलिदान की ऊँची से ऊँची सीढ़ी पर चढ़कर मानव का पथ प्रदर्शक बनता है। वह मध्य युगीन भारतीय नारी की भाँति केवल पुरुष की इन्द्रियासक्ति की भोग्य मात्र नहीं, वरन् उसके समस्त जीवन की सह-

योगिनी है। प्रसाद के नाटकों, कहानियों तथा उपन्यास आदि सभी काव्याङ्गों में नारी के श्रद्धा, त्याग एवं उदार रूप का चित्रण मिलता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी नारी पात्र हैं, जो मानवगत दुर्बलताओं के शिकार बनकर विलास भावना, मिथ्याभिमान, ईर्ष्या, स्वार्थपरता आदि पाशवीय कृतियों की पराकाष्ठा को प्राप्त होते हैं, किन्तु अन्त में ऐसे पात्रों में उदात्त वृत्तियों की प्रबलता चित्रित की गयी है।

स्वयं नाटककार प्रसाद ने भी अपनी उल्लेखनीय नाट्यकृति 'अजातशत्रु' में नारी-जीवन का यह आदर्श माना है, 'कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है—जो अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसलिए प्रकृति ने इतना सुन्दर और मनमोहन आवरण दिया है""रमणी का रूप।""क्रूरता अनुकरणीय है, उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा।

उक्त कथन का अभिप्राय यह नहीं है कि सभी पुरुष कठोर और क्रूर हैं तथा नारी कोमल और करुण है, बल्कि जैसा कि श्री जगदीशनारायण दीक्षित का कहना है—'कठोरता एवं कोमलता पुरुष और नारी के क्रमशः सामान्य गुण-धर्म हैं। इसके अपवाद भी अनेक हो सकते हैं, पर आदर्श स्थिति यही है। कोमल एवं करुण भावापन्न नारी की गोद में वैभव एवं विलास की भावनाओं में मदान्ध एवं क्रूरता और जटिलता का प्रतीक किसी अन्य स्त्री का ही सन्तप्त हृदय शान्त नहीं होता, अपितु पुरुष भी उसमें चिरकल्याण खोजता है। विरुद्धक और प्रसेनजित मल्लिका की शरण में आकर उसकी करुणा में विश्रान्ति पाते हैं। अनन्तदेवी और छलना क्रमशः देवकी और वासवी की क्षमामयी मूर्ति के समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानती है। अतः प्रसाद की नारी सृष्टि एक स्वर्गिक सुषमा से मण्डित तथा अपूर्व गरिमा से गौरवान्वित है। आदर्श के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित होकर भी वह जीवन के धरातल पर विचरण करती है। यह है उनके नारी जीवन का रहस्य।

प्रश्न ८—स्पष्ट कीजिए कि 'देवसेना का चरित्र' प्रसाद जी की एक अलौकिक भेंट है।

उत्तर—आदर्श नारी-चरित्र—वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में नारी पात्रों का महत्व है और कथावस्तु के अन्तर्गत उनका उतना ही महत्व है जितना कि पुरुष-पात्रों का। चूंकि प्रसाद के सभी पात्रों का चारित्रिक विकास कृत्रिम न होकर अन्तर्द्वन्द्व व घटनाओं के घात-प्रतिघातों से होनेवाले चरित्र-विकास की मनोवैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर हुआ है। अतः मानवीय अन्तःकरण की दो परस्पर विरोधी सद् व असद् प्रवृत्तियों के आधार पर, उनके नारी पात्रों के भी दो वर्ग दीख पड़ते हैं।

संगीत-प्रियता और प्रकृति-प्रेम—देवसेना के चरित्र में संगीत-प्रियता का गुण विशेष रूप से विद्यमान है और उसका संगीत-प्रेम जन्मजात है तथा जीवन के विषम क्षणों में भी वह संगीत की तरंगों में मग्न रहती हैं। मालव दुर्ग पर हूणों व शकों के सम्मिलित आक्रमण के समय भी वह गाना चाहती है और उसकी संगीतप्रियता के अतिरेक को देख भीमवर्मा कहता भी है, 'देवसेना, तुझे गाने का भी विचित्र रोग है।' परन्तु हम इसे चारित्रिक त्रुटि नहीं कह सकते, क्योंकि स्थूल व बाह्य दृष्टि से संगीत को देखनेवाले भले ही संगीत-प्रियता को रोग समझ बैठें, पर वास्तव में संगीत रोग नहीं है। देवसेना तो संगीत को ब्रह्म की सत्ता के समान सर्वत्र व्याप्त देखती हैं और वह कहती भी है—'प्रत्येक परमाणु के मिलने में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विरक्त कर रखा है; इसी से तो उसका स्वर विश्व-वीणा में शीघ्र नहीं मिलता……पक्षियों को देखो, उनकी चह-चह, कल-कल, छल-छल के कोकली में रागिनी है।

पावन प्रेम-व्यंजना—देवसेना की प्रणय-कथा भी अत्यन्त हृदयस्पर्शी है और अपने जीवन के बसंतकाल में जिस स्कन्द को प्रतिभा मानस में प्रतिष्ठित करती है वही विजया की ओर आकृष्ट हो जाता है। मालव की राज सभा में विजया के प्रति कहे गए स्कन्द के इस कथन—'विजया, यह

तुमने क्या किया' से वह स्कन्द के हृदय की दशा समझ लेती है, परन्तु वह सामान्य नारी की भाँति ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित नहीं होती। वह अपनी असाधारण गम्भीरता और सहिष्णुता से अपने नारी हृदय की सहज दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर मानव जीवन के अत्यन्त उच्च स्तर पर स्थित होती है। यही उसके चरित्र की महानता है।

अपूर्व त्यागमयी—देवसेना अपूर्व त्यागमयी है और त्याग तो मानो उसके चरित्र में मूर्तिमान होकर विद्यमान है। वह विजया के लिए अपना सर्वस्व तक न्योछावर कर देती है और अपने प्रेम को अपने अन्तस्तल में छिपाये रखती है। वह त्याग से ही ईश्वर की प्राप्ति समझती है और इसीलिए वह अपने-प्रेम का मूल्य नहीं चाहती। उसके भाई बन्धुवर्मा ने देश-प्रेम के कारण अपने देश मालव को निःस्वार्थता से त्याग दिया था, अतः अपने भाई के त्याग को वह स्वार्थ रूप में नहीं देखना चाहती। इसीलिए वह स्कन्दगुप्त के साथ विवाह नहीं करना चाहती, क्योंकि तब लोग यह समझते कि 'मालव' देकर देवसेना का ब्याह किया जा रहा है।

प्रश्न ९—स्कन्दगुप्त नाटक के आधार पर बन्धुवर्मा का चरित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर—प्रमुख पात्र—बन्धुवर्मा मालव का राजा है और यदि वह 'स्कन्दगुप्त' नाटक में बहुत ही थोड़ी देर के लिए आता है पर पाठकों व दर्शकों के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों से 'बन्धुवर्मा उन पात्रों में हैं जिनका सम्बन्ध कथानक के बीच से प्रारम्भ होता है और कुछ काल तक योगवाही रूप में चलकर समाप्त हो जाता है। यों तो ऐसे पात्रों को प्रमुख स्थान नहीं मिलता पर बन्धुवर्मा में एक विशेषता है। उसके युद्ध में प्राण-विसर्जन कर देने के उपरान्त भी उसकी शक्ति और प्रभाव जीवित बने रहते हैं उसकी समाप्ति तो वस्तुतः उसी समय होती है जब उनके सहयोगी उस लक्ष्य की प्राप्ति कर लेते हैं जिनके लिए उसका जीवन समर्पित था।

वीरता का वरणीय बन्धु—बन्धुवर्मा को वसुन्धरा का शृंगार और वीरता का वरणीय बन्धु कहा गया है तथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह साहसी, शूर व परम देशभक्त है। वह कठोर से कठोर विपत्ति में भी धैर्य धारण करता है और युद्ध में उत्साहपूर्वक भाग लेता है। मालव पर हूणों और शकों के संयुक्त आक्रमण के समय वह गुप्त सम्राट् के पास सहायतार्थ दूत अवश्य भेजता है पर वह दूसरों पर ही अवलम्बित नहीं रहता और आक्रमणकारियों से दुर्ग घिर जाने पर धैर्य नहीं खोता। बल्कि अन्तिम क्षण तक युद्ध करने के लिए प्रस्तुत रहता है। इस प्रकार विपत्ति में वीरता, युद्धोत्साह और वैभव व उत्कर्ष में विनम्रता आदि महान् गुण ही उसके व्यक्तित्व को गौरवान्वित करते हैं।

त्याग और शील सौजन्य की प्रतिमा—बन्धुवर्मा के क्षत्रियोचित साहस और पराक्रम के अतिरिक्त आदर्श व कर्त्तव्य के लिए त्याग भाव भी है। स्कन्दगुप्त द्वारा विदेशियों के आक्रमण से 'मालवा की रक्षा होने पर वह उस वीर परोपकारी के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने की प्रतिज्ञा करता है और उसे पूर्णतः चरितार्थ करता है। वह न केवल अपना जीवन अपितु मालव राज्य भी स्कन्द के चरणों पर न्यौछावर कर देता है।

प्रेरणामूलक चरित्र—उक्त विवेचना स यह स्पष्ट हो जाता है कि बन्धुवर्मा का चित्र एक सच्चे क्षत्रिय का चित्र है और वह अपूर्व वीर, त्यागी व राष्ट्र-प्रेमी है तथा श्री परमेश्वरीलाल गुप्त के कथनानुसार "....बन्धुवर्मा के चरित्र का स्वरूप अपने आप निखर कर सामने आ जाता है। संकुचित मनोवृत्तियाँ और स्वार्थपूर्ण सीमित विचारों से ऊँचे उठकर बन्धुवर्मा स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीयता की उच्च प्रेरणा से अपना सर्वस्व त्याग करता है और अंततोगत्वा अपने जीवन को उसके लिए उत्सर्ग कर देता है उसका जैसा आदर्श क्षत्रियत्व, वीरता, साहस, धैर्य और दृढ़ता, कर्तव्यपरायणता और त्याग यथार्थ से बहुत ऊँचे आदर्श की चरम सीमा है। वह सेनापति पर्णदत्त से अधिक उत्साही भटार्क से

अधिक वीर और स्कन्दगुप्त से कहीं अधिक कर्त्तव्यपरायण, दूरदर्शी और अपने निश्चय के प्रति दृढ़ है। अपने इन गुणों के कारण वह नाटक के अन्य पात्रों को दबा लेता है।""उसका जीवन, उसका आत्मोत्सर्ग, उसका बलिदान देश के नवयुवकों के लिए प्रेरणामूलक है।'

प्रश्न १०—स्कन्दगुप्त नाटक के आधार पर पर्णदत्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—अत्यन्त गौरवपूर्ण चरित्र—'स्कन्दगुप्त' में पर्णदत्त के सक्रिय युद्ध व्यापार को प्रत्यक्ष रूप में प्रधानता नहीं दी गई और द्वितीय अंक में चक्रपालित द्वारा केवल यह सूचना प्राप्त होती है—'वह सौराष्ट्र की चंचल राष्ट्रनीति की देख-रेख में लगे हैं।' हाँ उनके प्रचण्ड पराक्रम और अद्वितीय रणकौशल का परिचय स्कन्द के उद्गारों में अवश्य मिलता है। नाटक के चतुर्थ अङ्क में पुनः उनके गौरवपूर्ण चरित्र की प्रभावोत्पादिनी झाँकी दृष्टिगोचर होती है। कुम्भा के तीव्र-प्रवाह में स्कन्दगुप्त के अपने साथियों सहित विलुप्त हो जाने के पश्चात् साम्राज्य अस्त-व्यस्त हो जाता है और इस संकटग्रस्त समय में वृद्ध पर्णदत्त के धैर्य व साहस की अनुपम परीक्षा होती है तथा वह उसमें खरे सिद्ध होते हैं।

वह साम्राज्य के बिखरे हुए रत्नों को एकत्र करता है और उन निराश्रितों के संगठन व सेवा कार्य अपनाता है। उसके इस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ हैं और वह उसके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है, सूखी रोटियाँ बचाकर रखनी पड़ती है। जिन्हें कुत्तों को देते हुए संकोच होता था, उन्हीं कुत्सित अन्नों का संचय अक्षय-निधि के समान उन पर पहरा देता हूँ। मैं रोऊँगा नहीं; परन्तु यह रक्षा क्या केवल जीवन का बोझ सहन करने के लिए है! नहीं पर्ण! रोना मत! एक बूँद आँसू आँखों में न दिखाई पड़े। तुम जीते रहो, तुम्हारा उद्देश्य सफल होगा। भगवान यदि होंगे तो कहेंगे कि मेरी सृष्टि में एक सच्चा हृदय था। संतोष कर उछलते हुए हृदय! संतोष कर; तू रोटियों के लिए नहीं जीता है। तू उसकी भूल दिखाता है, जिसने तुझे उत्पन्न किया है। परन्तु जिस काम

को कभी नहीं किया, उसे करते नहीं बनता, स्वांग भरते नहीं बनता; देश के बहुत से दुर्दशाग्रस्त वीर-हृदयों की सेवा के लिए करना पड़ेगा। मैं क्षत्रिय हूँ, मेरा यह पाप ही अपधर्म होगा; साक्षी रहना भगवान।

वस्तुतः वीर हृदय की सच्ची कामना कभी निष्फल नहीं होती और वीर पर्णदत्त की पुकार भी खाली नहीं जाती तथा स्कन्द स्वयं प्रकट होकर अपने को समर्पित कर देता है। वीर पर्णदत्त हूणों से अन्तिम युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता है और सम्राट् की प्राणरक्षा में उसकी मृत्यु होती है तथा गरुड़ध्वज की छाया में पवित्र क्षात्र-धर्म का पालन करते हुए उसी के मान के लिए मर मिटने की जो कामना उसने नाटक के प्रारम्भ में की थी वह पूर्ण होती है। इस प्रकार पर्णदत्त का चरित्र 'अनुपम त्याग, कर्त्तव्य-निष्ठा, स्वदेशानुराग' आदि आदर्श गुणों का संविधान है और एक विचारक के शब्दों में पर्णदत्त के रूप में प्रसाद जी ने इस नाटकीय ऐतिहासिक पात्र के माध्यम से हमारे सम्मुख एक ऐसा चरित्र प्रस्तुत किया है जो देश के नवयुवकों को हमारी सामयिक अवस्था में उद्बोधन करता दिखाई पड़ता है।'

प्रश्न ११—स्कन्दगुप्त के नाटक के आधार पर 'विजया' का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—रूप-गर्विता और धन-लोलुप—विजया मालव के धन-कुबेर की अत्यन्त सुन्दर कन्या है और वह न केवल रूप-गर्विता है अपितु वर्गगत विशेषता के रूप में धन-प्रेम भी उसमें विद्यमान है। इस नाटक में वह सर्वप्रथम अवन्ती दुर्ग में राजपरिवार के साथ विदेशियों के आक्रमण से अपने धन व जीवन के रक्षार्थ सशंकित और भयभीत दीख पड़ती है। उसमें स्वाभाविक ही क्षत्राणियों के समान साहस व त्याग का नितान्त अभाव है तथा उसे यह कल्पना भी न थी कि स्त्रियाँ भी दुर्ग रक्षा का भार ग्रहण कर सकती हैं। वह देवसेना के कहने पर आत्म-रक्षार्थ छुरी तक अपने पास नहीं रखना चाहती और जयमाला व देवसेना के वीरोचित साहस को देख उन्हें आग की चिनगारियाँ कहती है। साथ ही वह

इतनी अधिक धन-लोलुप है, कि देश रक्षा के लिए अपनी अपार धनराशि में से एक क्षुद्र अंश भी नहीं देना चाहती और अपनी इस दुर्बलता को यह कह कर छिपाना चाहती है कि 'इस प्रकार अर्थ देकर विजय खरीदना तो देश की वीरता के प्रतिकूल है।'

विलास-भावना, मिथ्याभिमान और ईर्ष्या व संदेह से युक्त नारी— मूलतः विजया सुख भोग की लालसा, ईर्ष्या और संदेह से युक्त नारी है तथा उसमें दृढ़ता, स्थिरता और विवेक-बुद्धि का अत्यन्त अभाव है। अपनी उत्कृष्ट विलास कामना के लिए वह इधर-उधर मारी-मारी फिरती है और अन्त में इसी मृगतृष्णा में अपने प्राण भी गँवा बैठती है।

वह सर्वप्रथम स्कन्दगुप्त के स्वस्थ शरीर, सुन्दर रूप व उच्च स्थिति से प्रभावित हो उसके प्रति आकृष्ट होती है परन्तु उसका प्रेम तो वैभव से ही रहा है, अतः वह स्कन्द से शीघ्र ही विरक्त हो जाती है। स्कन्द की ओर आकृष्ट होते समय उसे उसके वैभव का भी ज्ञान था परन्तु जब वह उसकी वैराग्य-युक्त बातें सुनती है तो उसकी ओर से उदासीन हो जाती है और चूँकि उसकी प्रेम-भावना में केवल रूप व ऐश्वर्य-मोह ही है। अतः उसमें अस्थिरता या अविवेक की भी प्रधानता है।

इसीलिए वह स्कन्द के पश्चात् चक्रपालित के प्रशस्त वक्ष और उदार मुखमण्डल को देख कर उसे अपने अनुरूप समझती है पर चक्रपालित संभवतः उसकी पहुँच के बाहर था। अतः कुछ समय उपरान्त भटार्क को प्राप्त कर लेने पर उस ओर से उदासीन हो वह चक्रपालित को विस्मरण कर देती है। भटार्क के व्यक्तित्व में उसे स्वेच्छित वस्तु प्राप्त होती जान पड़ती है; क्योंकि वह रूपवान और बलिष्ठ होने के साथ ही मगध का महाबलाधिकृत व उसकी भाँति महत्वाकांक्षी भी था।

वह इतनी अधिक मोहान्द और विवेकशून्या है कि प्रथम साक्षात्कार में ही भटार्क को पति के रूप में वरण कर उसके साथ वंदिनी होकर मालव राज्यसभा में सबके समक्ष अपना निर्णय प्रकट कर देती है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसे उसके जीवन की सबसे बड़ी भूल समझना चाहिए; क्योंकि उसके इस कार्य के पीछे कोई महत्त उद्देश्य न था।

प्रश्न १२—स्पष्ट कीजिए कि 'जयमाला ने भारतीय क्षत्रिय नारी की गौरवपूर्ण झाँकी अपने आचरण व चरित्र द्वारा प्रस्तुत की है।'

उत्तर—सच्ची क्षत्राणी का यथार्थ व प्रकृत रूप—जयपाला मालव-नरेश बन्धुवर्मा की पत्नी है और उसमें सच्ची क्षत्राणी का यथार्थ व प्रकृत रूप मिलता है। वह 'आग की चिंगारी और ज्वालामुखी की सुन्दर तट के समान है' तथा दो ही चार स्थलों पर हमारे समक्ष आते हुए भी अपने उज्ज्वल व्यक्तित्व की स्मृति छोड़ जाती है।

वह शूर और साहसी है तथा उसमें उत्साह, स्वावलम्बन और क्षत्रियोचित गौरव भी विद्यमान है। जब मालव दुर्ग आक्रमणकारियों से घिर जाता है और स्कन्दगुप्त की सहायता आने में विलम्ब देख बन्धुवर्मा अत्यन्त चिन्तित व व्याकुल भाव से अपनी संकटापन्न परिस्थिति का परिचय उसे देते हुए कहते हैं 'प्रिये! अभी तक युवराज का कोई संदेश नहीं मिला। सम्भवतः शक और हूणों की सम्मिलित वाहिनी से आज दुर्ग की रक्षा न कर सकूँगा।' तब वह अत्यन्त साहसपूर्ण शब्दों में कहती है—'नाथ! तब क्या मुझे स्कन्दगुप्त का अभिनय करना होगा। क्या मालवदेश की सहायता पर ही राज्य करने का साहस हुआ था? जाओ प्रभु! सेना लेकर सिंह-विक्रम की सेना पर टूट पड़ो। दुर्ग रक्षा का भार मैं लेती हूँ।'

जयमाला के उक्त कथन में गर्व और आत्मविश्वास भरा हुआ है तथा विजया जब उसके कथन पर सन्देह करती है तब वह कहती है—'हम क्षत्राणी हैं, चिरसंगिनी खड्गलता का हम लोगों से चिरस्नेह है।' वह युद्ध को भी गान समझती है और वह ध्वंसमयी महामाया प्रकृति को निरन्तर संगीत मानती है। इस प्रकार क्षत्रियोचित स्वाभिमान का उग्र रूप उसके चरित्र में दीख पड़ता है।

यथार्थ जगत् की मानवी—जयमाला देवसेना की भाँति भावना लोक की दूती नहीं है बल्कि यथार्थ जगत् की मानवी है। अतः वह स्वाभाविक

हो 'सर्वात्मा के स्वर में अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का विलय' करने के लिए तत्पर नहीं होती। वह मालव का राज्य स्कन्दगुप्त को समर्पित करने वाले बन्धुवर्मा के प्रस्ताव का विरोध करती है लेकिन वह दुराग्रही नहीं है, अतः जब वह यह देखती है कि प्रस्ताव के पक्ष में सभी हैं तो वह अपने पति के अटल निश्चय के सामने सिर झुकाकर क्षमा माँगती और स्वीकार कर लेती है।

उसकी यह स्वीकृति किसी कृत्रिम भावना या दबाव से नहीं अपितु हृदय की सच्ची प्रेरणा से है। वह बन्धुवर्मा से कहती भी है—'आज हमने जो राज्य पाया है वह विश्व साम्राज्य से ऊँचा है' और स्कन्दगुप्त को मालव का सिंहासन समर्पित करते हुए कहती है—'देव यह सिंहासन आपका है, मालवदेश का इस पर कोई अधिकार नहीं—आर्यावर्त के सम्राट् के अतिरिक्त अब दूसरा कोई मालव के सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।'

इस प्रकार जयमाला का चरित्र संक्षिप्त होते हुए भी उल्लेखनीय है और पं० जगदीशनारायण दीक्षित के शब्दों में—जयमाला के चरित्र का यह महान् गौरव है कि वह अपनी स्वभावतः दुर्बलता को दबाकर अपने पति की अनुगामिनी होती है। उसकी पतिभक्ति का चरमरूप तो हमें उसके पति के साथ सती हो जाने में दिखाई पड़ता है। उसने यथार्थ ही भारतीय क्षत्रिय नारी जीवन की गौरवपूर्ण झाँकी अपने आचरणों एवं चरित्र द्वारा प्रस्तुत की है।

प्रमुख स्थानों की सप्रसंग व्याख्या

अधिकार सुख ···· ···· ···· अच्छे हैं ॥१॥

प्रसंग—'स्कन्दगुप्त' नाटक के आरम्भ में नाटक का नायक स्कन्द इन उद्गारों को व्यक्त करता है इससे एक ओर-तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका स्वभाव किस प्रकार का था तथा दूसरी ओर तो यह

आभास भी होता है कि नाटक में प्रारम्भ से ही अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। स्कन्द युवराज था पर वह यह भी जानता था कि उसकी विमाता अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुप्त को मगध का सम्राट बनाना चाहती है, अतः उसके इन उद्गारों में अधिकार-सुखों के प्रति निराशा होना स्वाभाविक ही है।

व्याख्या—वह कहता है कि मनुष्य को जब कभी भी दूसरों पर शासन करने का सुख प्राप्त हो जाता है तब यह एक शराबी की भाँति बेसुध और मदहोश हो जाता है अर्थात् अधिकार सुख मनुष्य को मतवाला बना देता है तथा वह ऐसी सृष्टि में पहुँच जाता है जहाँ पहुँचकर स्वयं को सबसे अधिक सुखी और श्रेष्ठ समझने लगता है। वह स्वयं को प्रत्येक कार्य का नियामक अर्थात् हर प्रकार का कार्य कराने वाला समझता है और नियम बनाने की महत्वाकांक्षा उससे न जाने क्या-क्या कराती है। वह झूठ-सच, भला-बुरा सब कुछ करने को प्रस्तुत हो जाता है।

प्रसाद जी स्कन्द के माध्यम से यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि अधिकार सुख प्राप्त होने पर व्यक्ति भले ही गर्व में आकर अपने को सर्वोपरि समझ बैठे परन्तु उसका महत्व उत्सवों में काम करने वाले नौकरों व युद्ध में काम आने वाली ढाल से किसी भी प्रकार अधिक नहीं है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार उत्सव के प्रसंगों में नौकरों को प्रत्येक कार्य के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है और युद्ध में ढाल पर ही सभी प्रकार के प्रहार किये जाते हैं उसी प्रकार अधिकार के लिये लोभी व्यक्ति को प्रत्येक कार्य में आगे रहकर भला-बुरा सब कुछ सहना पड़ता है।

राष्ट्रनीति समझने .... लगे हैं ॥२॥

प्रसंग—मगध के महानायक पर्णदत्त को युवराज स्कन्द की उदासीनता रुचिकर नहीं लगती है और वह चाहते हैं कि स्कन्द अपने उत्तरदायित्व को समझे। उनसे काफी तर्क-वितर्क करने पर जब स्कन्द

उनसे यह कहता है कि आप जैसे महावीर के होते हुए मुझे चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं है तब पर्णदत्त ने जो विचार व्यक्त किये वही इन पंक्तियों में अंकित है।

व्याख्या—पर्णदत्त स्कन्द से कह रहे हैं कि गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ जाने पर गुप्तवंश के शासकों के कर्तव्य व उत्तरदायित्व भी बढ़ गये हैं पर ऐसा प्रतीत होता है कि अब गुप्तवंश के शासक अपने उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हैं। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि एक ओर तो सम्राट् कुमारगुप्त भोग-विलास में लीन हो शासन से उदासीन हो गये हैं और दूसरी ओर युवराज स्कन्द अपने अधिकारों के प्रति उदासीनता व्यक्तकर अपने उत्तरदायित्व को विस्मृत कर रहे हैं।

पर्णदत्त कहते हैं कि गुप्तवंश के शासक शायद समझ रहे हैं कि यह राज्य व वैभव उन्हें अनायास ही प्राप्त हो गया है और इसीलिये उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि इस विशाल साम्राज्य की स्थापना के लिये कितना कठोर परिश्रम किया गया था।

आँधी आने के ···· ···· ···· साम्राज्य की नहीं है ॥ २ ॥

प्रसंग—यह स्कन्द गुप्त से पर्णदत्त का कथन है। प्रकृति के व्यवहार की ओर संकेत करके पर्णदत्त सम्मानित संकट के प्रति स्कन्दगुप्त से कहता है।

व्याख्या—आँधी आने के पहले आकाश शान्त हो जाता है। बिजली गिरने के पहले बादल आकाश में अच्छी तरह छा जाते हैं। ये दोनों कार्य इस बात के द्योतक हैं कि शीघ्र ही भयंकर आँधी आने वाली है अथवा बिजली गिरने वाली है। यही दशा आज गुप्त साम्राज्य की है। इस स्थिति से स्पष्ट है कि गुप्त-साम्राज्य का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। यहाँ पर्णदत्त अनुमान द्वारा यह सिद्ध कर रहा है कि गुप्त साम्राज्य पर शीघ्र आपत्ति आने वाली है। आपत्तियाँ प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे रही हैं, पर अनुमान-प्रमाण से उनका ज्ञान होता है।

कि यदि यह संसार केवल-छल-मात्र ही है तब मैं समझता हूँ कि शायद वह परमपिता परमात्मा नहीं चाहता है कि हमेशा मोहग्रस्त ही रहें। मातृगुप्त का कहना है कि मोह के कारण ही मनुष्य के हृदय में अनेक अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं, अतः मोह हमेशा बना रहना चाहिए।

व्याख्या—भाव यह है कि माया और मोह परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा बिना मोह के माया हो ही नहीं सकती और माया

प्रसङ्ग—प्रस्तु अंग है। अतः यदि मोह ही न होगा तो फिर ईश्वर हुए कह रहा है कि तुम हम दोनों के स... ईश्वर को यह सृष्टि ही... सृष्टि का सर्वोत्तम क्षण था, सरलतापूर्वक न भुला देना और उन अल्हड़पन की बातों में टाल न देना! मातृगुप्त अपनी प्रिया से कहता है कि तुम्हारी चंचल हँसी में मादक लहरें थीं और काम-क्रीड़ा में छोड़े गये निःश्वासों के आनन्द में तुम मेरे समीप आकर मेरे अधर चूम लेती थी तथा मैं बन्दी भ्रमर की भाँति सिहर उठता था।

व्याख्या—मातृगुप्त का कहना है कि प्रिये! तुम मुझे अपनी बाँहों में उसी प्रकार आबद्ध कर लेती थी जिस प्रकार मधु के लोभी भ्रमर को कली बन्दी बना लेती है और उस समय हम दोनों के प्रेम का प्याला छलक उठता था तथा सोया हुआ सौन्दर्य जाग्रत हो उठता था।

मातृगुप्त अपनी प्रेमिका से कह रहा है कि संयोग-क्षणों में हमारे नेत्र तक एक-दूसरे से मिल जाते थे और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति में मेरे नाखून तुम्हारी छाती छील देते थे तथा तुम्हारी छाती पर पड़ा हुआ मोतियों का हार उन नख-क्षत के साथ ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि रात्रि का तिरछा चाँद तारों के साथ शोभायमान होता है।

मातृगुप्त अपनी प्रेमिका को सम्बोधित करके कह रहा है कि मैं विरहावस्था में संयोग के क्षणों को याद कर आश्चर्यचकित हो उठता हूँ और मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम अपनी निष्ठुर-क्रीड़ा के भ्रम में तथा मेरी बातों के भुलावे में आकर प्राप्त होने वाले सुख के लिए पुनः एक बार भूल कर मेरे समीप आ जाना तथा यह समझ लेना कि

उनसे यह कहता है कि आप जैसे महावीर के होते हुए मुझे चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं है तब पर्णदत्त ने जो विचार व्यक्त किये वही इन पंक्तियों में अंकित है।

व्याख्या—पर्णदत्त स्कन्द से कह रहे हैं कि गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ जाने पर गुप्तवंश के शासकों के कर्तव्य व उत्तरदायित्व भी बढ़ गये हैं पर ऐसा प्रतीत होता है कि अब गुप्तवंश के शासक अपने उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हैं। उसके

यह है कि एक ओर तो सम्राट कुमार

व्याख्या। ... स्मरण करते ही मातृगुप्त को अपने घर की, अपनी स्त्री की याद हो आयी। स्त्री की स्मृति ने उन सुखद दिवसों का चित्र सामने नचा दिया जब वह अपने घर में अपने जीवन का सुख लूटता था। अपनी स्त्री के साथ निवास करना ही अमृत का सरोवर था जिसमें उसका मुखरूपी कमल पर मुग्ध मेरा मन-रूपी भौंरा भाँति-भाँति की सुखद कल्पनाएँ करता जैसे गूंजता फिरता था। साधारण कमल के फूल में पराग और सुगन्ध होती है। मेरे इस मुखरूपी कमल में भी प्रसन्नता और आनन्द की मात्रा इतनी अधिक थी कि उसने गृह-सरोवर के आस-पास सभी को प्रसन्न कर रखा था। प्रातःकाल के सूर्य की सुनहरी किरणें हमारे मुख-कमल को और विकसित कर दिया करती थीं। रात में चन्द्रिका का आवरण ओढ़कर मैं निद्रा में सुख-स्वप्न से देखने लगता था। अपनी मीठी नींद में मैंने मधुर सौन्दर्य के दर्शन किये, इन्द्रियातीत जगत् को जीती-जागती मूर्तिमान कल्पना के सुख में मैं विभोर सा हो रहा था। इस प्रकार चारों ओर आनन्द ही आनन्द था और मैंने भी उसी अलौकिक आनन्द को प्राप्त करना चाहा था, परन्तु प्राप्त न कर सका; क्योंकि संसार मेरे लिए एक प्रकार से स्वप्नवत् ही था, अतएव मेरी निद्रा भङ्ग होते ही मेरे सब सुख-स्वप्न नष्ट हो गये।

९. यदि यह .... आहार मिले।

प्रसंग—जब कुमारदास मातृगुप्त से कहता है कि तुम विद्वान हो, अतः तुम्हें इतना मोह न होना चाहिए। तब मातृगुप्त उससे कहता है

कि यदि यह संसार केवल-छल-मात्र ही है तब मैं समझता हूँ कि शायद वह परमपिता परमात्मा नहीं चाहता है कि हमेशा मोहग्रस्त ही रहें। मातृगुप्त का कहना है कि मोह के कारण ही मनुष्य के हृदय में अनेक अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं, अतः मोह हमेशा बना रहना चाहिए।

व्याख्या—भाव यह है कि माया और मोह परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा बिना मोह के माया हो ही नहीं सकती और माया ईश्वर की लीला का अंग है। अतः यदि मोह ही न होगा तो फिर ईश्वर की लीला ही समाप्त हो जायगी। वस्तुतः ईश्वर की यह सृष्टि ही माया-मय है। इसके बन्धनों में मनुष्य उसी समय तक फँसा रहता है जब तक उसके मन में मोह होता है। मोह पर विजयी होने के बाद मनुष्य संसार से मुक्त और निर्लिप्त हो जाता है। मातृगुप्त का कहना है कि इस सृष्टि का कार्यक्रम तभी तक चल सकता है—जिस ईश्वर ने इस संसार की सृष्टि की है, उसकी अभिलाषा तभी पूरी हो सकती है—जब मनुष्य में मोह बना रहे। सांसारिक कार्यों में वह तभी प्रयत्नशील होता है और इस तरह सृष्टि की इच्छा पूरी होती है; सृष्टि के काम होने लगते हैं। वस्तुतः माया-मोह के चक्कर में पड़कर ही मनुष्य संसार के सभी काम करता है अतः मोह की समाप्ति भी उचित नहीं है।

१०. इस गतिशील जगत्..................चेतना रहस्य है।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्ति स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक से ली गयी है। इस पंक्ति में परिवर्तन को जीवन की गतिशीलता मानते हुए उसे जीवन की सभी सुख-सुविधाओं का मूल आधार मानते हुए धातुसेन मातृगुप्त से कहता है।

व्याख्या—गुप्त साम्राज्य में परिवर्तन की बात सुनकर तुम्हें जो आश्चर्य हुआ उससे जान पड़ता है कि तुम सीधे-सादे युवक हो, तुम्हें संसार का कुछ पता नहीं है। तुम्हें ज्ञान होना चाहिए कि यह जगत् सदैव परिवर्तित होता रहा है। परिवर्तन ही इस जगत् का स्वभाव है। अतः संसार के छोटे और बड़े सभी वर्गों में सदैव परिवर्तन होते रहते

हैं। यदि यह क्रम कुछ समय के लिये रुक जाता है अथवा किसी वर्ग का कार्य कुछ समय के लिए स्थिर हो जाता है तो ध्यान रखना चाहिए कि शीघ्र ही कई गुने अधिक वेग से परिवर्तन होगा, जिसे हम परिवर्तन अथवा प्रलय के नाम से पुकारते हैं। इसलिए जब तक परिवर्तन का क्रम बना रहता है तभी तक यह संसार बना है। यदि परिवर्तन होना बन्द हो गया अथवा कार्य में किसी कारण से स्थिरता आ गयी, तब समझना चाहिये कि अब मृत्यु अथवा नाश निश्चित है।

संसार का समय एक चतुर खिलाड़ी के समान है। स्त्री और पुरुष इसकी गेंद हैं, जिन्हें दोनों हाथ में लेकर वह खेलता है। आशय यह है कि पुरुष और स्त्री के संयोग से ही इस सृष्टि की रचना होती है और आगे भी अन्य व्यापार चलते हैं।

११. यह भी रहस्य .... से एक होंगे।

प्रसंग—जब मातृगुप्त ने धातुसेन (कुमारदास) से कहा कि अनन्तदेवी के इशारे पर मगध सम्राट् कुमारगुप्त नाच रहे हैं और यह अद्भुत पहेली ही है। तब धातुसेन उससे कहता है कि यह पहेली नहीं अपितु रहस्य है।

व्याख्या—संसार पुरुष और स्त्री के संयोग से बना है। इसमें पुरुष प्रश्न और समस्या के समान है। स्त्री इस प्रश्न का उत्तर-रूप है, समस्या का हल है, मानों सभी शंकाओं का समाधान करने वाली व्याख्यात्री के रूप में वह हमारे सामने आती है। पुरुष में जिज्ञासा है; स्त्री उसे शान्त करने को तैयार रहती है। संसार के संघर्ष में भाग लेने वाला पुरुष कठोर हो जाता है, उत्तेजित हो जाता है; अनेक अभावों को देखकर वह असन्तुष्ट हो जाता है। स्त्री उसे सन्तोष देती है, शान्त करती है। इस प्रकार स्त्री सन्तप्त पुरुष के लिए चाँदनी के समान शीतल महौषधि का कार्य करती है।

पुरुष अभागा है, स्त्री के हाथ में पड़कर बच्चों की तरह वह सन्तुष्ट हो जाता है। जो कुछ स्त्री कह देती है, आँख मुंदकर उसे मान कर

उसके अनुकूल कार्य करता है तथा उसके हाथों की कठपुतली बन जाता है। इसी प्रकार वृद्ध गुप्त-सम्राट् भी स्त्री के हाथ की कठपुतली हो रहे हैं। उनकी युवती रानी अनन्तदेवी उनको हाथ में लेकर अपनी इच्छाएँ पूरी कराना चाहती हैं।

१२. सूची भेद्य······ ······ ······आलिंगन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में अनन्तदेवी भटार्क से कहती हैं कि प्रपंच-बुद्धि में भविष्य का ज्ञान जरूरी है।

व्याख्या—भटार्क ने जब अनन्तदेवी से यह जानना चाहा कि प्रपंच-बुद्धि कौन है तब अनन्तदेवी ने उससे कहा कि प्रपंचबुद्धि वह है जो छिपे हुए भाग्य को भी अत्यन्त सरलतापूर्वक पढ़ सकता है, अर्थात् वह भविष्य का ज्ञाता है और उसके लाल नेत्र प्रलय की सूचना देते हैं तथा हँसी में महानाश का अट्टहास है अर्थात् वह हमेशा क्रुद्ध रहता है और उसमें विनाश की सामर्थ्य भी है। साथ ही प्रचंड आँधियाँ और झंझावत उसके लिए मनोरंजन की वस्तुएँ हैं तथा उसकी बातें बड़ी भयानक हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रपंचबुद्धि भयानक कार्यों को करने में सिद्धहस्त है।

१३. भरा नैनों······ ······ ······ ······ ······मन में रूप।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ स्कन्द गुप्त से ली गयी हैं। इन पंक्तियों में देवसेना अपनी व्यथा गीतों में व्यक्त कर रही है।

व्याख्या—देवसेना गीत में अपने हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए कहती है कि किसी छली प्रेमी का निष्कलंक व अद्भुत रूप मेरे नेत्रों और हृदय में समा गया है तथा पृथ्वी, जल, वायु, आकाश चारों ओर मुझे उसकी झलक ही दीख पड़ती है और मैं उसके प्रेम में पागल हो गई हूँ। देवसेना कह रही है कि मैं प्रिय को प्राप्त करना चाहती हूँ, परन्तु वह मुझे प्राप्त नहीं हो पाता और उसे ढूँढ़ती हुई मैं थक कर अपनी सुध-बुध खो बैठी हूँ। देवसेना कहती है कि प्रिय का रूप संसाररूपी सागर में भरा है और इस संसार के प्रत्येक कण को पागल किये हुए है तथा हृदय में व्याप्त होने से धमनियों का शब्द हृदय-वीणा पर प्रेम-गान गा रहा है।

१४. पवित्रता की........................जा सकती है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में देवसेना विजया से सुख-दुःख के सम्बन्ध में बतला रही है।

व्याख्या—देवसेना मालव के धनकुबेर की कन्या विजया से कह रही है कि संसार का निर्माण सत् और असत् दोनों के संयोग से हुआ है तथा दोनों का एक सा महत्व है अर्थात् दोनों की स्थिति सापेक्ष है। उसका कहना है कि यदि असत् न हो तो, न कोई सत् का अनुभव ही करे और न उसके अस्तित्व व महत्व को ही समझे। उसके कथनानुसार भलाई-बुराई, शुद्धता-अशुद्धता और सुख-दुःख सभी एक दूसरे से सम्बन्वित ही हैं तथा अशुद्धता द्वारा ही शुद्धता को नापा जा सकता है, अर्थात् शुद्धता की विशदता को समकक्ष रखकर ही हम यह अनुमान कर सकते हैं कि शुद्धता कितनी महत्वपूर्ण है।

देवसेना का विचार है कि सुख की अनुभूति दुःख का बोध होने पर ही होती है अर्थात् जब तक हम दुःखी न होंगे तब तक हमें सुख के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान भी न होगा। इसी प्रकार पुण्य का मूल्यांकन पाप द्वारा ही होता है अर्थात् यदि संसार में पापी न हों तो पुण्यात्मा या साधुजनों का महत्व ही विदित न हो। देवसेना विजया को सम्बोन्धित कर कहती है कि प्रत्येक वस्तु का वास्तविक स्वरूप हम अनुभव द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं और केवल दूर से देखकर ही हमें किसी वस्तु का वास्तविक परिचय नहीं मिल पाता।

१५. विजया का........................रहस्य है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में स्कन्दगुप्त चक्रपालित से वीरों के स्वरूप का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—स्कन्दगुप्त और चक्रपालित के वार्तालाप के समय स्कन्दगुप्त चक्रपालित से कहता है कि साधारण-सी विजयों में सच्चे वीरों को सन्तोष नहीं हो पाता। अतः यदि हमें कहीं किसी स्थान पर कुछ सफलता प्राप्त हो जाय तो हमें इसी में सन्तोष न कर लेना चाहिए।

स्कन्दगुप्त का कहना है कि वीरों में तो एक प्रकार की अजीब-सी उन्मत्त भावना रहती है और वह हमेशा वीरतापूर्ण कार्यों के लिए प्रवृत्त रहते हैं।

स्कन्द चक्रपालित से कह रहा है कि संसार में त्याग ही सर्वोपरि कहा गया है और त्याग का दूसरा नाम ही महत्त्व है। अतः वीर पुरुषों को अपने प्राणों का मोह त्यागने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि वीर पुरुष हमेशा प्राणों का त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं, वह तो युद्धभूमि में अपने प्राणों की बाजी लगाना अपने जीवन का महान् धर्म समझते हैं।

१६. घने प्रेम-तरु.............................प्रेम-तरु-तले।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में देवसेना प्रेम के महत्त्व का वर्णन कर रही है।

व्याख्या—देवसेना कह रही है कि प्रेम-रूपी घने वृक्ष की शीतल छाया में बैठो और प्रेम की शरण लो तो वहाँ भी सांसारिक कष्टों से पीड़ित व्यक्ति को आराम नहीं मिलता। वह कहती है कि वहाँ तो विश्वास की छाया और श्रद्धा-रूपी नदी का किनारा है तथा इस श्रद्धा-रूपी नदी के तट की रेत पुष्प-रज-युक्त व कोमल है। साथ ही अश्रुओं से सींची जाने के कारण उसमें किसी प्रकार का छल-प्रपञ्च भी नहीं है और पवन भावरूपी फूलों को वृक्ष से नीचे गिराकर हृदय के घावों को भर देते हैं अर्थात् मनुष्य की समस्त व्यथा दूर कर देते हैं।

देवसेना कह रही है कि यहाँ से मन की व्यथापूर्ण कथा को बिना सुने चले जाना उचित न होगा; अतः हमें चाहिए कि सौन्दर्य-रूपी रस की मधुरिमा का पान कर उनकी जीवन-रूपी बेल को सींच हम प्रेम से सबके गले मिलें और अपना सम्पूर्ण जीवन इस प्रकृति की क्रीड़ा-भूमि में आनन्दपूर्वक व्यतीत करें।

१७. कृतघ्न.............................नहीं रह सकता।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में गोविन्दगुप्त भटार्क को सम्बोधित कर रहा है।

व्याख्या—गोविन्दगुप्त भटार्क को सम्बोधित कर कहते हैं किन्तु कृतघ्न है और अपने आप पर किये गये उपकारों को स्वीकार नहीं करता तथा मुझे यह नहीं मालूम कि वीर उन्मत्त नहीं होते और वीरता आँधी की भाँति सब कुछ नष्ट करने में नहीं है बल्कि वीरता तो न्याय-परता पर निर्भर है। गोविन्द गुप्त का कहना है कि जो वीरता धर्म की रक्षा व पाप का नाश कर सके वही चिरस्थायी होती है। अतः तू—भटार्क—ऐसी वीरता की उपेक्षा कर अधिक दिनों तक अपना सिर ऊँचा उठा नहीं सकता।

१८. बोद्धों का .... संतरण है।

प्रसंग—यहाँ स्कन्दगुप्त अपने मनोदशा का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—स्कन्दगुप्त कह रहा है कि मैं इस संसार से ऊब गया हूँ और बौद्धों के निर्माण, योगियों को समाधि तथा पागलों को विस्मृति एक साथ चाहता हूँ अर्थात् इन तीनों का मुझ पर एक साथ ऐसा सामूहिक प्रभाव पड़े कि मुझे अपने तन-मन व अन्य किसी सांसारिक वस्तु की सुध-बुध न रहे। उसका कहना है कि मेरी चेतना मुझे राजा कहती है पर मेरे अन्तःकरण में विद्यमान कोई अदृश्य शक्ति कहती है कि यह तेरा भ्रम मात्र है और तू तो परमात्मा के हाथों की कठपुतली मात्र है तथा तेरा मुकुट मजदूर की टोकरी से भी तुच्छ है।

चूँकि मुकुट और टोकरी दोनों ही सिर पर रखे जाते हैं, अतः वहाँ दोनों की तुलना उचित ही है और टोकरी में तो सामान रखकर उसका कुछ उपयोग भी हो सकता है, पर मुकुट का कोई अन्य उपयोग नहीं होता, अतः मुकुट से टोकरी को श्रेष्ठ कहा गया है। स्कन्द भगवान् की प्रार्थना करते हुए कहता है कि क्या वह दयावान होते हुए भी अपने भक्तों को इसलिए दुःखी रखता है ताकि वह हमेशा उसकी याद करते रहें, पर जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं दुःखों से नहीं डरता और मुझे किसी के व्यंग्यात्मक वचनों की भी परवाह नहीं है।

१९. ह ....विश्व होगा ?

प्रसंग- अवतरण में कमला स्कन्दगुप्त को उत्साहित कर रही है।

व्याख्या—स्कन्द अपने आपको अकेला और निस्सहाय मानता है, अतः भटार्क की माता कमला उसे सम्बोधित कर कह रही है कि कौन कहता है कि तुम अकेले हो और तुम्हें यह न भुला देना चाहिए कि समस्त संसार ही तुम्हारे साथ है। वस्तुतः कर्मवीर का साथ सम्पूर्ण सृष्टि देती है और अकेला कर्मवीर ही बड़ी-से-बड़ी शक्ति से टकरा सकता है, अतः कमला स्कन्द को कर्मवीर मानते हुए कह रही है कि वह स्वयं यह समझे कि वह कौन है और उसमें क्या शक्ति है? तथा अपने बल का स्मरण कर वह जीवन-संग्राम में विचलित न हो।

कमला स्कन्द से कहती है कि जो भविष्य की चिन्ता कर भावी परिणामों से भयभीत हो जाता है वह जीवन में कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। अतः तुम्हें भविष्य से न डरना चाहिए। वह कह रही है कि तुम्हारे चरणों के आघात से विन्ध्याचल के सदृश कोई पर्वत उठ खड़ा होगा और विघ्नों को समाप्त कर देगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि एक बार विन्ध्याचल सूर्य को ढँकने के लिए आकाश की ओर बढ़ रहा था। इसी पौराणिक कथा का आधार यहाँ लिया गया है।

कमला स्कन्द से कह रही है कि तुम स्वयं भी भगवान् राम और कृष्ण के समान अवतार हो सकते हो तथा तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि जो अपने सभी कार्य ईश्वर द्वारा प्रेरित मानने वाले व्यक्ति का प्रत्येक कार्य ईश्वर का ही कार्य कहलाता है, अतः वह व्यक्ति ईश्वर का अवतार ही कहा जायेगा। वह कहती है कि इस प्रकार तुम्हें राक्षसी-वृत्तियों का नाश करने के लिए अग्रसर होना चाहिए और तुम जो मोह-निद्रा में सो रहे हो उन्हें जाग्रत् करो तथा हूणों के अत्याचार से दुःखी प्राणियों को सुख प्रदान करो।

न कर कहते हैं
में को स्वीक
ोते औ

[illegible]

रश्मिरथी

प्रश्न १-रश्मिरथी के रचयिता कौन थे?
उत्तर-रामधारी सिंह दिनकर
प्रश्न २-रश्मिरथी का नायक कौन है
उत्तर-कर्ण
प्रश्न ३-सूतपुत्र के नाम का किसे पुकारा जाता है
उत्तर-कर्ण को
प्रश्न ४-राधेय किसे कहा जाता है?
उत्तर-कर्ण को
प्रश्न ५-पर मैं अभागिनी हीं आंचल फैलाकर
जा रही रिक्त बेटे से भीख न पाकर। किसका कथन है
उत्तर-कन्ती का
प्रश्न ६-कर्ण का ज्योति का जेटा कौन कहता है
उत्तर-कृष्ण
प्रश्न ७-दो में जिसका सिर फटे फड़ूंगी मैं ही
जिसकी की गरदन कटे कटूंगी मैं ही किसकी उक्ति थे?
उत्तर-कुन्ती की
प्रश्न ८-कर्ण किस देवता का अंश माना जाता था?
उत्तर-सूर्य का

पुस्तकों के कवियों का नाम

पुस्तक	कवि
पद्मावत	मलिक मुहम्मद जायसी
आखिरी कलाम	मलिक मुहम्मद जायसी
चित्र रेखा	मलिक मुहम्मद जायसी
मसला	मलिक मुहम्मद जायसी
सूर सारावली	सूरदास
सूर सागर	सूरदास
साहित्य लहरी	सूरदास
रामचरित मानस	तुलसीदास
विनय पत्रिका	तुलसीदास
कवितावली	तुलसीदास
दोहावली	तुलसीदास

गीतावली	तुलसीदास
वैराग्य संदीपनी	तुलसीदास
पार्वती मंगल	तुलसीदास
कृष्ण गीतावली	तुलसीदास
हनुमान बाहुक	तुलसीदास
रामचन्द्रिका	केशवदास
रसिक प्रिया	केशवदास
कवि प्रिया	केशवदास
वीर सिंह देव चरित्रं	केशवदास
जहांगीर चारु चन्द्रिका	केशवदास
बिहारी सतसई	बिहारी
शिवा बावनी	भूषण
शिवराज भूषण	भूषण
छत्र शाल दशक	भूषण
उद्धव शतक	जगन्नाथ दास रत्नाकर
प्रिय प्रवास	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
वैदेही वनवास	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
पारिजात	अयोध्या सिंह उपाध्याये 'हरि औध'
चोखे चौपदे	अयोध्या सिंह उपाध्यावं 'हरिऔध'
बोलचाल	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरऔध'
रस कलश	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अधखिला फूल	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
रुक्मिणी परिणय	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
साकेत	मैथिलीशरण गुप्त
जय भारत	मैथिलीशरण गुप्त
पंचवटी	मैथिलीशरण गुप्त
: यद्रथ वध	मैथिलीशरण गुप्त
यशोधरा	मैथिलीशरण गुप्त
ारत भारती	मैथिलीशरण गुप्त
ापर	मैथिलीशरण गुप्त
अनघ	मैथिलीशरण गुप्त
सिद्धराज	ैथलीशरण गुप्त

झंकार	मैथिलीशरण गुप्त
चित्राधार	जयशंकर प्रसाद
लहर	जयशंकर प्रसाद
झरना	जयशंकर प्रसाद
प्रेम पथिक	जयशंकर प्रसाद
आंसू	जयशंकर प्रसाद
कामायनी	जयशंकर प्रसाद
गोदान	मुंशी प्रेमचन्द्र
भवन	मुंशी प्रेमचन्द्र
निर्मला	मुंशी प्रेमचन्द्र
रंगभूमि	मुंशी प्रेमचन्द्र
स्कन्द गुप्त	जयशंकर प्रसाद
चन्द्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद
ध्रुव स्वामिनी	जयशंकर प्रसाद
पुष्पलता	सुदर्शन
सुदर्शन और सुधा	सुदर्शन
सुमन	सुदर्शन
तीर्थराज	सुदर्शन
हारूँगी नहीं	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
लाडवन्ती	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
दो किनारे	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
छाया	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
टीला	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
दायरे तथा अन्य कहानियाँ	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
आञ्चलिक कहानियाँ	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
ये गलियाँ ये रास्ते	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
चाँद बोला	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
खोया खोया मन	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
छोटा डाक्टर	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
पूर्ति	पं० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण'
नन्हा चांद	शिव प्रसाद सिंह

त्यागपत्र

प्रश्न–त्यागपत्र के लेखक कौन है?

उत्तर–त्यागपत्र उपन्यास के लेखक हैं जैनेन्द्र कुमार जी

प्रश्न–मृणाल ने जिस लड़की का अपराध अपने सिर लिया था उसका नाम क्या था?

उत्तर–उस बालिका का नाम शीला था।

प्रश्न–शीला ने क्या अपराध किया था?

उत्तर–शीला ने मास्टर साहब के कुर्सी के गद्दी में पिन फंसा दी थी।

प्रश्न–मृणाल का पाल पोषण कौन कर रहा था?

उत्तर–मृणाल के भाई एवं भाभी।

प्रश्न–शीला और मृणाल का एक दूसरे के घर आने जाने का क्या परिणाम हुआ?

उत्तर–शीला के भाई से मृणाल का मानसिक लगाव हो गया।

प्रश्न–प्रमोद से मृणाल ने क्या कहा?

उत्तर–देख प्रमोद शीला के भाई का कोई पैगाम मेरे पास लाया कि मैं छत से गिरकर मर जाँऊगी।

प्रश्न–मृणाल ने शीला के भाई से क्या मागकर खाने का प्रयास किया?

उत्तर–दवा के नाम पर जहर।

प्रश्न–मृणाल के पति ने उसे क्यों त्याग दिया?

उत्तर–मृणाल ने पतिव्रता धर्म के पालन में निष्कपट भाव से शीला के भाई द्वारा आये पत्र अपने पति को दिखा दिया इसलिए।

प्रश्न–मृणाल ने कन्या को जन्म देने के बाद अस्पताल में क्यों नहीं काम करना चाही?

उत्तर–क्योंकि काम उसे तब मिलता जब वह ईशाई धर्म अपना लेती, उसे भूखों मरना पसन्द था पर धर्म परिवर्तन पसन्द नहीं था।

प्रश्न—प्रमोद जब लड़की देखने जाता है तो गृहयति के बच्चों को पढ़ाते हुए किसे देखता है?

उत्तर—वह मृणाल थी।

प्रश्न—अन्तिम बार मृणाल को प्रमोद कहाँ किस जगह पाता है?

उत्तर—उस जगह जहाँ अत्यन्त गिरे हुए लोग तथा अघोड़ वेश्यों निवास करती था।

प्रश्न—प्रमोद को वहाँ के लोग क्या समझते हैं?

उत्तर—प्रमोद को मृणाल का पुराना प्रेमी समझते हैं।

प्रश्न—प्रमोद अपना त्यागपत्र कब देता है।

उत्तर—उसे सत्रह वर्ष वाद अपने पुत्र की याद आती है और उसके स्नेह को बहुमूल्य मानते हुए उनके प्रति कुछ भी न कर पाया कि आत्मग्लानि से उसका जी भर उठता है। और त्याग पत्र दे देता है।

प्रश्न—औरंग जेब जब प्राण छोड़ता है तो उसके मुख से क्या मिलता है?

उत्तर—अल्लाह हो अकबर

प्रश्न—औरंगजेब के मृत्यु के समय उसकी उम्र क्या थी?

उत्तर—८६ वर्ष

प्रश्न—अंसर नाटक में क्या व्यक्त किया जाता है।

उत्तर—इस नाटक में मध्यम वर्गीय जीवन के खोखलेपन और हास्यास्वद स्तरके विखराव को बड़ी बारीकी से दिखाया गया है।

प्रश्न—पर्दे के पीछे नाटक के क्या स्पष्ट होता है।

उत्तर—पर्दे के पीछे नाटक में उदयशंकर भट्टजी ने पूंजीपतियों के चरित्र को पर्दाफास किया है। जो बाहर कुछ होता है और आन्दर कुछ। गरीबों का शोषण करते और दूसरी तरफ बात-बात में दया आदि का दम्भ भी भरते हैं।

प्रश्न—विषकन्या में गोविन्द वल्लभपंत जी ने क्या कहने का प्रयास किया है।

उत्तर—चन्द्रविजय द्वारा मोह एवं कर्त्तव्य मे से एक का चय करना और कर्तव्य को प्राथमिकता दे अमपजित का वध कर देना ही श्रेयस्कर रहा अतः